



वैदिक वांगमय में प्रकृति पूजा

Dr. Santosh Kumar Sourtha

Associate Professor-Sanskrit, S.N.K.P. Govt. P.G. College, Neem Ka Thana, Sikar, Rajasthan, India

सार

इस भाव को व्यक्त करने के लिए ही वेदों में भी नदियों को सदा प्रवाहित होने की बात कही गयी है। आत्मा है। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। अथर्ववेद में पृथ्वी का माता और पूज्या कहा गया है। "मुण्डकोपनिषद् में पृथ्वी के सम्बन्ध में "पृथिवी विश्वस्य धारिणी" कहा गया है। प्रकृति पूजा हमारी अतिशय उदार संस्कृति की द्योतक है। अतः ऋत, स्वस्ति, शान्ति, तप, त्याग, सर्वभूतहित एवं लोक-मांगल्य की भावना हमारी महनीय संस्कृति के अमर उद्घोष हैं। ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मन्त्र हमारी सम्पूर्ण संस्कृति का महावाक्य है- "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।" इस लोक मंगल की भावना से पूरित हमारी संस्कृति जीवन के त्याग पक्ष पर आधृत है। इसलिए प्रकृति की मनसा पूजा के बिना भारतीय संस्कृति का ज्ञान दिवा स्वप्न है। अतः वेदस्थ प्रकृति ऋतवृहत् का भास्वर रूप अंकित करते हुए धरती से स्वर्ग की ओर दिव्य चेतना के साथ उद्गमन करती हुई चित्ताकर्षक एवं रमणीय दिखाई देती है। सम्पूर्ण प्रकृति के द्वार सभी के लिए सदैव ही खुले हुए हैं। हमारी आरण्यक संस्कृति प्रकृति की कमनीय क्रोड में ही पुष्पित एवं पल्लवित हुई। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने मानव जीवन को स्वस्थ रखने के उद्देश्य से प्रकृति प्रदत्त वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों पर अनुसंधान करते हुए अमूल्य योगदान दिया। मानव जीवन के कल्याणार्थ वैदिक कालीन समाज में न केवल पर्यावरणीय तत्त्वों के प्रति सजगता थी, वरन् उसकी रक्षा के प्रति तत्परता तथा महत्त्व के प्रति मान्यता भी विद्यमान थी। भूमि को ईश्वर का प्रतिरूप मानकर उसका रक्षण और पूजन उनके जीवन का अविभाज्य अंग था। जैसा कि कहा भी गया है

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमृतोदरम ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥' अर्थात् जिसकी पाद स्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है, धुलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे उत्तम ब्रह्म को नमन है। यहाँ पर ब्रह्म को नमन करते हुए प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश दिया गया है। वैदिक ऋषि को यह भान था कि भूमि, द्यौ, अन्तरिक्ष, जल, वनस्पति आदि के दूषित हो जाने पर जीवन दूभर हो जायेगा, इसीलिए इनके पूज्य स्वरूप को स्वीकार कर इनके शान्ति की बात करता है। शान्ति मंत्र का प्रयोजन सिर्फ इतना ही नहीं है कि किसी क्रिया-कलाप के शुभ अवसर पर बोला जाए, बल्कि इसमें पृथिवी, जल, वनस्पति, औषधि आदि सभी प्राकृतिक तत्त्वों का समावेशन किया गया है।

जिन पर हमारा जीवन आश्रित है। ऋग्वेद में मनोहारी प्राकृतिक जीवन को ही सुख-शान्ति का आधार माना गया है। इसमें वर्षा ऋतु को उत्सव एवं पूजन द्वारा शस्य-श्यामला प्रकृति के प्रति हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की गई है। अथर्ववेद में जल, वायु एवं औषधियों को छन्दस या आच्छादक बताया गया है। प्रकृति के ये तीनों ही तत्त्व जीवन को सुरक्षा प्रदान करते हैं। अतः इनको परिधि शब्द से वर्णित किया गया है।

परिचय

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परावलंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं परिस्थितियां एवं शक्तियां विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश^[1,2], महाद्वीप, विश्व अथवा संपूर्ण सौरमंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्योः शांतिरंतरिक्ष...' (शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)। इसलिए वैदिक काल से आज तक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय-समय पर पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर मानव-जाति को सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वह किया गया है।^[3,4]

इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक-जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान-संतुलन की अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति ने हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे-जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि

प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनों का भंडार है।

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली-भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण और ऋषिऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें – सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।[5,6]

आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, अब से तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहां तक कि संस्कृत हिंदी कोशों में भी यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूप से प्रचलित नहीं हो पाया था। अतएव प्राचीन कोशकारों ने इसका कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्द की संधि से होती है। इसके साथ ही आङ्पूर्वक वरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल (वही, पृ. 200)। इसी ग्रंथ में संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ-सर्वतोभाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदि के रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर से होता है (वही, वृ. 170)। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है (वही, पृ. 1056)। इसी प्रकार पर्यावरण – परि+आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओर से ढकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओर का घेरा' होगा। अतएव वैज्ञानिक कोशकारों ने इसका अर्थ, 'पास पड़ोस की परिस्थितियां और उनका प्रभाव' के रूप में माना है।[7,8]

सर्वप्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकी शब्द कोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग किया है। वे ही इसके प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता' हैं (कंप्रिहेंसिव इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, डॉ. रघुवीर, पृ. 589)। वास्तव में पर्यावरण या इन्वायरमेंट शब्द अत्यधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हीकल द्वारा 'इकॉलाजी' शब्द का प्रयोग सन् 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूप में इन्वायरमेंट शब्द से प्रचलित हुआ है। (पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण रघुवंशी, पृष्ठ 41)। इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग, ऐसी क्रिया जो घेरने के भाव को सूचित करे, के संदर्भ में किया जाता है। विभिन्न कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिए

गए हैं। जैसे-वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति, प्रभाव, प्रतिवेश, परिवर्त, तथा वायुमंडल, वातावरण और परिवेश, अड़ोस-पड़ोस, इर्द-गिर्द, आस-पास की वस्तुएं एवं पर्यावरण आदि।[9,10]

आधुनिक चिंतन में पर्यावरण के दो भेदों का ही वर्णन मिलता है। वे हैं-

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण-इसके अंतर्गत वे तत्व सम्मिलित होते हैं, जो जैवमंडल का निर्माण करते हैं।
2. सांस्कृतिक या मानवकत पर्यावरण इसमें आर्थिक क्रियाएं, धर्म अधिवास, आवासीय दशाएं एवं राजनीतिक परिस्थितियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह तथ्य वैदिक और आधुनिक चिंतन से स्वयं स्पष्ट होता है कि प्राणि-जगत् को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय तत्व 'देव' केवल पार्थिव ही नहीं है, अपितु उनका स्थान अंतरिक्ष और द्युलोक भी है। वैदिक ऋषियों ने उन सभी से प्राणियों की मंगल-कामना एवं सुरक्षा चाही है।[11,12]

पर्यावरण को जानने के लिए अब यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौन से हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों से आवरण दूर किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन-मनन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासीत्रो सदासीत्तदानी...' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न सत् था न असत् फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः शंका उठाई गई कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही कर सकता है? किंतु इसके समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे...' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवों का स्वामीभूत हिरण्यगर्भ अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है-कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयः कृण्वति भुवनस्य रेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं। ये अनादि शाश्वत सत्ता के अंगभूत हैं। अर्यमा उदासीन कण है, जो विज्ञान की विकिरण के फोटॉस के अनुरूप है। वरुण और मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज वहन करते हैं)। वैदिक परिकल्पनानुसार सृष्टिकाल से दृश्य जगत् तक भौतिक पदार्थ पांच अवस्थाओं में निष्क्रमण करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि में महा-अग्रिकांड (बिग बैंग) के बाद की अवस्थाएं क्रमशः इस प्रकार हैं-[13,14]

1. आपः (क्रियाशील) अवस्था-कांटम या क्वार्कसूप (शपतथ ब्राह्मण, 1/1/1)
2. बृहती आपः -प्लाज्मा अवस्था (ऋग्वेद, 10/12/7)

3. अपानपात-नाभिक अवस्था या कॉस्मिक मैटर (ऋग्वेद, 1/35/2)
4. अर्ध गर्भः -परमाणु अवस्था (ऋग्वेद, 1/164/36)
5. पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) का दृश्य जगत्।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में –तैत्तिरीय ब्राह्मण (2, 8, 9, 6 तथा 1, 1, 3, 1), गोपथ ब्राह्मण (1, 1, 1, 2), सामविधान ब्राह्मण 1/1), जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (7, 1, 1), शतपथ ब्राह्मण (6, 1, 1, 13, 19, 2, 2, 3, 28), जैमिनीय ब्राह्मण (1, 68 तथा 2, 146, ऐतरेय ब्राह्मण (5, 5, 7), ताज्य ब्राह्मण (4,1, 1), तैत्तिरीय संहिता (4, 1, 8, 3), ऐतरेये उपनिषद् (1, 1), तैत्तिरीय उपनिषद् (2, 7, 10) आदि में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, जो वेदों की विषद् व्याख्या रूप हैं और उन अर्थों का पूरक भी है। इसी क्रम में दार्शनिकों एवं वेदांत ने भी उसी प्रकार चिंतन किया है। पौराणिक दृष्टि तथा मनु का सृष्टि सिद्धांत व आयुर्वेद का चिंतन भी वैदिक विज्ञान का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत् का विकास ही पर्यावरण प्रादुर्भाव है। सृष्टि का जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्य संबंध है। इसीलिए आदिकाल से मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्य, सुस्वास्थ्य, जीवन-शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके। यही कामना अथर्ववेद का ऋषि, 'आयुः प्राणं प्रजां पशु' (अथर्ववेद, 19, 71, 1) व 'शत जीव शरदो' ...अथर्ववेद, 3, 11, 4) करता है और ऋग्वेद में ऋषि, 'शतां जीवन्तु शरदः...' (ऋग्वेद 10/18/4) तथा यजुर्वेद में ऋषि, 'शतिमिन्नु शरदो अंति...' (यजुर्वेद, 25/22) तथा वह ऋषि का आशीर्वाद पाता है कि हे मनुष्य! बढ़ता हुआ तू सौ शरद ऋतु और सौ बसंत तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत्), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्पशक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्ष तक आयुष्य प्रदान करें (अथर्ववेद)।[15,16]

इतना ही नहीं कि किसी भी तरह सौ वर्ष जिएं, प्रत्युत, आरोग्यता और बल के साथ जिएं। हम सौ वर्ष पर्यंत, ज्ञानशक्ति का विकास करें, सौ वर्ष तक जीवन को ज्ञान के अनुकूल विकसित करें, सौ वर्ष तक वेद को सुनें और प्रवचन करें और आयु भर किसी के पराधीन न रहें (ऋग्वेद, 7/66/16)। संतान और धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र तथा निरंतर यज्ञ करने वाले हों। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग के आचरण से आयु बढ़ती है (ऋग्वेद 10/18/2 तथा 10/18/3)। दीर्घायु प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन में श्रेष्ठ सद्गुण बढ़ाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। प्राणशक्ति के साथ आत्मिक बल धारण करने वाले मृत्यु के वश में नहीं जाते (अथर्ववेद 10/3/12 तथा 19/27/8)। इसलिए वेद की उपर्युक्त शाश्वत् भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है

(ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज-सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)।[17,18]

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे-पृथ्वी हमारे लिए कंटकरहित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रद हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखप्रद हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करती है (सामवेद मंत्र-4)।[19,20]

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएं की गई हैं। जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएं व विदिशाएं हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है (टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमा नसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध कर कहा कि मध्य स्तर के बादल छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटलाइट टेक्नोलॉजी को वैज्ञानिक रहस्य उजागर करने में बहुत कारगर एवं सहयोगी बताया। नासा ने इस अध्ययन के लिए प्रो. शाइमी को न केवल सम्मानित किया, अपितु उन्हें भू-व्यवस्था का

अध्ययन करने के लिए 3 लाख 24 हजार डॉलर का तीन वर्ष के लिए अनुदान भी दिया।[21]

इसी तारतम्य में वैदिक ऋषियों ने पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशुओं को प्रजाजनों के लिए सुख स्वरूप होने की कामना की है। उदाहरणार्थ-हमारी शांति के लिए पर्वत निश्चल हों (ऋग्वेद 7/35/3 एवं 8), वनों के वृक्ष हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/5), हमारे लिए औषधियां शांतिकारक हों (यजुर्वेद, 36/17), घोड़े और गायें हम लोगों के लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/12)। इस प्रकार पर्यावरण के हर घट के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व-शांति का स्वप्न साकार होने की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने एक संपूर्ण वैचारिक जगत् के साथ-साथ सांस्कृतिक जगत् पर भी अत्यंत गहराई से विचार कर पर्यावरण के दायरे को विराटता प्रदान की है और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की कामना के साथ-साथ मार्थुय की उदात्त भावना तथा अभय की प्रार्थना भी की है। जहां-जहां हमारे लिए जैसी परिस्थिति हों, वहां-वहां हमें हर प्रकार से अभय प्राप्त हो तथा प्रजा एवं पशुओं से भी हमें अभय मिले (यजुर्वेद, 37/12)। संसार में वायु मधुर होकर चले, नदियां मधुर होकर बहें, औषधियां मधुर उगें। रात मधुर हो प्रभात भी। पृथ्वी, द्यौ, वनस्पतियां, सूर्य और गौवें मधुर हों (यजुर्वेद, 13/27, 29)। हमें अंतरिक्ष अभय करे, द्यावा, पृथ्वी, नीचे-ऊपर, आगे-पीछे, मित्र-शत्रु, ज्ञात-अज्ञात, रात दिन और समस्त दिशाओं से अभय की प्राप्ति हो (अथर्ववेद, 19/15/5/6)।[22,23]

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।

दशहृद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप की अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवनयापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता-अनैतिकता की सीमा-रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक प्रतीत होते हैं। भारतीय चिंतन-धारा की यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण-अभिशाप्त सदी में हमें अपने अतीत की बार-बार याद दिलाती है।[24,25]

प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण की आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा जोर-शोर से होने लगी है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यह शब्द अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अचानक ही दो-चार दशक पूर्व प्रकट हो गया है। इसकी अवधारणा भले ही नई लगती हो, किंतु यह तो प्रकृति के प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है, क्योंकि मानव द्वारा श्वास और मल-मूत्र तथा पसीना त्यागने के साथ-ही-साथ प्रदूषण आरंभ हो गया।

महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में वस्तु या भाव के जो छह विकार गिनाए हैं, उनमें पर्यावरण के संबंध में अस्ति या सत्ता शब्द चिंतनीय हैं। इसकी व्याख्या में वे कहते हैं कि कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता बनाए रख सकती है, जब वह स्वयं को धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है अथवा उसकी नैसर्गिक संरचना विकृत होती है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। वस्तु के निर्माण का जो अनुपात है, वह स्थित रहना चाहिए। अनुपात भंग हुआ और वस्तु का स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वस्तु के स्वास्थ्य का विनष्ट होना ही प्रदूषण है।

प्रकृति में एक का उच्छिष्ट दूसरे के लिए उपभोग्य बन जाता है। प्रकृति की संतुलन प्रक्रिया सृष्टि के आदिकाल से अनवरत एवं अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। यदि किसी कारण से इसमें कभी कोई व्यवधान पड़ता है तो पारिवेशिक संतुलन में प्रतिकूल स्थितियां दृष्टिगत होने लगती हैं। वस्तुतः प्रकृति में उत्पन्न होने वाली यही प्रतिकूलता प्रदूषण है। प्रदूषण के भाव को दर्शाने वाले कुछ शब्द हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। जैसे-

‘रपः’ शब्द वैदिक वाङ्मय में कुछ स्थलों पर आया है, जिसे शारीरिक दोष या बुराई के अर्थ में माना गया है। ऋग्वेद में प्राचीन चिकित्सक अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की गई है कि तुम हमारे दोषों को अच्छी प्रकार शोधन करो (ऋग्वेद, 1/34/11)। इसी प्रकार रुद्रदेव को देवकृत पाप का अपहरण करने वाला तथा किए हुए अपराध को क्षमा करने वाला या विनष्ट करने वाला बताया गया है (ऋग्वेद, 2/33/7 तथा 10/97/10)। औषधियों को भी शरीर के प्रदूषण को दूर करने वाली बताया गया है और अन्यत्र वायु से व्याधि दूर कर सूख प्रदान करने और दोषों को हटाने की कामना की गई है (ऋग्वेद, 10/137/10)।[26,27]

इसी प्रकार ‘विष’ शब्द का प्रयोग शारीरिक व प्राकृतिक प्रदूषण के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 191वें सूक्त के मंत्रों में विष शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऋषि अगस्त्य ने विष की आशंका से युक्त होकर उसके निवारण के लिए इस सूक्त का प्रयोग किया है। इसके देवता जल, तृण और सूर्य हैं तथा इसमें मधुविद्या का वर्णन है। आचार्य सायण ने इसे विषरहित करने वाली मधुविद्या कहा है कि यह विषभाव को दूर कर अमृत बनाती है। उन्होंने इसके अल्प और महाविष- दो प्रकार लिखे हैं। इकाई अथवा सामूहिक रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है। विष के प्रभाव से खाद्य, पेय, भक्ष्य सामग्री तथा जल एवं वायु आदि विषाक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी विष क्षोभक और श्वासरोधक होकर प्राणों का नाश करते हैं। प्राचीन युग के विष चिकित्सक अपने राजा की सेना एवं जनपद की रक्षा करने में समर्थ होते थे।

एक और शब्द ‘पाप’ भी प्रदूषण के पर्याय स्वरूप अथर्ववेद में आया है (अथर्ववेद, 10/1/10)। उपनिषदों में प्रदूषण का पर्याय ‘पाप’ शब्द आया है (महानारायणोपनिषद्, 4/6)। यहां मिट्टी से दोष हरने की प्रार्थना है। अन्यत्र तिल को भी पापनाशक माना है। कहीं-कहीं ‘मल’ शब्द भी प्रदूषक वाचक माना गया है (अथर्ववेद, 6/115/3) इसमें स्नान करने से जैसे दैहिक मल दूर होता है, वैसे ही पवित्र आचरण व व्यवहार से सभी लोग प्रदूषण से बचने के

लिए प्रयत्नशील हों। इसी प्रकार ऋग्वेद में पापों और हिंसकों के आने के पूर्व ही उनसे बचने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया है (ऋग्वेद, 8/44/30 तथा 10/113/10)। इसके लिए यहां 'दुरित' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलों पर 'अहः' शब्द भी पर्यावरण के लिए प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद, 1/106/10)। इसमें यह प्रार्थना है कि हमसे सभी दोषों को दूर कर दें। अथर्ववेद 4/27/1 से 7/11/6 तथा 6/8 एवं 10/21) के अनेक मंत्रों में मरुत देवों से पाप एवं दोषों को छुड़ाने की बार-बार प्रार्थना की गई है। वेद में एक और शब्द 'एनः' उन्हीं अर्थों में आया है, जिनमें अहं: या अध शब्द आए हैं। यजुर्वेद के कई मंत्रों में – अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा दिन-रात, स्वप्न अथवा जागते हुए पाप अथवा प्रदूषण से छूटने की कामना की गई है (यजुर्वेद, 20/14 से 16)। [28,29]

प्रदूषण निवारण के लिए ऋग्वेद (मंडल 7, सूक्त 50) में विभिन्न पदार्थों से विष आदि हरण की कामनाएं की गई हैं। आचार्य सायण ने 'विषादिहरणे विनियोग' लिखकर ही इस सूक्त का भाष्य किया है। प्रथम मंत्र में मित्र वरुण देवताओं से प्रार्थना की गई है कि विशेष रूप से बढ़े हुए विष से बचाते हुए हमारे पालना करें। 'अजका' नामक रोग की तरह यह अनिष्टकारी विष समाप्त हो, जिससे हम लोग प्रदूषण के पाप से पीड़ित न हों। दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वृक्षों की गांठ में अथवा शरीर के विभिन्न भागों में जो विष है, उसे प्रदीप्त अग्नि हमसे दूर करे। तीसरे मंत्र में, जो प्राण हरने वाला पदार्थ विष सेमर आदि वृक्षों में तथा जो नदियों के प्रवाह में होता है और जो विष, यव आदि औषधियों से उत्पन्न होता है, उस विष को विद्वान् निरंतर दूर करें, ताकि उस पापाचरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले रोग हमें प्राप्त न हों।

ऋग्वेद (7/104/9) में चेतावनी दी गई है कि जो कल्याणकारक पदार्थों अथवा वचनों को अपनी क्रियाओं से दूषित करते हैं, वे राक्षस दुःख सागर में गोते खाते हैं। इस प्रकार भौतिक एवं वैचारिक प्रदूषण के प्रति भी ऋषियों ने अपनी चिंता प्रकट की है। ऋग्वेद (10/137/5) के इस मंत्र में, देवगणों से प्रदूषण आदि दोषों से हमारे शरीर की रक्षा करने की कामना की गई है। इस लोक में सारी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करें, समस्त उत्पन्न पदार्थ हमारी रक्षा करें, जिससे हमारे शरीर आदि निर्दोष रहें। इसी प्रकार अथर्ववेद (8/2/19) में भी प्रदूषण मुक्ति की कामना उपलब्ध है, 'हे मनुष्य! जो तू खेती का उपजा धान्य खाता है और जो तू दूध व जल पीता है, चाहे वह नया हो या पुराना, वह सब अन्नादि तेरे लिए विष रहित हों।' [30,31]

प्रदूषण: सृष्टि के लिए विनाशकारी

सृष्टि की विनाश प्रक्रिया पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि विनाश का मूल कारण प्रदूषण ही है, क्योंकि व्यक्त पदार्थों के गुणों में विकार उत्पन्न होने पर, उनके विनष्ट होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसे ही वेदों में प्रतिसर्ग अथवा सर्ग कहा गया है। उक्त विकार को ही आधुनिक भाषा में प्रदूषण कहते हैं। वेदों को व्याख्यायित करते हुए वायुपुराण (62/15) में महर्षि वेदव्यास ने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा है कि इस सृष्टि के अपने स्वरूप में अधिष्ठित हो जाने पर इसका अंधाधुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुष्यों के क्रियाकलापों तथा

अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समय पूर्व वे दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्प के अंत में आने वाली प्रलय में उत्पन्न होते हैं, जिससे यह दृश्य प्रकृति लय की ओर अग्रसर हो दुःख हो जाता है। ऋग्वेद (10/86/5) का ऋषि भी इसी प्रकार चिंता करते हुए कहता है कि पर्यावरण प्रदूषण द्वारा बनाए हुए व्यक्त पदार्थों को, जब मनुष्य अपनी अतिशय भोगतृष्णा से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके सिर को झुका देती है। ऐसे विनाश की ओर जाने वाला विश्व के लिए यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी नहीं होती। [32]

प्रदूषण का प्रभाव

प्रदूषण के कारण अत्यधिक ताप बढ़ जाने से सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सूर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर, जंगल, नदी, पर्वत, वनस्पति आदि तीनों लोकों को जलाने लगती हैं (महाभारत, भिष्म पर्व, 77/11 तथा वायु पुराण, 7/41-42)। इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य अपनी किरणों से समुद्रों को शोषित कर संपूर्ण नदी, कूप एवं पर्वतों के झरनों के जल को भी सूखा देता है और अंत में वह अपनी प्रलयकालीन किरणों द्वारा पृथ्वी का भेदन करता हुआ, पाताल के जल को भी अर्थात् भूगर्भ के जल को भी खींच लेता है (मत्स्यपुराण, 165/1-3)। इससे भूगर्भीय जल का स्तर निरंतर नीचे गिरने लगता है, जिससे कुएं और नलकूप असफल होने लगते हैं और चारों ओर विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में पानी के जल का भीषण संकट ग्राम और नगर सब ओर दिखाई देने लगता है। इस भीषण अग्नि से, वन आदि जलने लगते हैं। मत्स्य पुराण (165/11/1) में इसी प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि के विनाशक रूप का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार अधिक ताप उत्पन्न होने के कारण भयानक आंधियां चलने लगती हैं और प्रकुपित वायु के प्रकोप से विनाशकारी मेघ, सूर्य, अग्नि और आंधियों की उत्पत्ति होती है (महाभारत, शल्य पर्व, 66/6)। यह प्रकुपित वायु समुद्रों को भी सूखा देती है, जिससे भीषण जल-संकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक ताप उत्पन्न होने के फलस्वरूप वृष्टि (वर्षा) असंभव हो जाती है और अनावृष्टि से चारों ओर हाहाकार मचने लगता है। यही संकेत ब्रह्मपुराण (231/14) में भी किया गया है। इस प्रकार बढ़े हुए ताप को ही 'कालाग्नि' के नाम से अभिहित किया गया है और उसके द्वारा विदग्ध हुई भूमि का भयावह चित्रण करते हुए महाभारत (शांतिपर्व, 293/4) में कहा गया है कि इससे समस्त स्थावर-जंगल प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो जाता है और अंत में समुद्रों का जल सूख जाने के कारण इस भूमि के जल और तृण आदि से रहित होने पर कछुए की पीठ की तरह स्वरूप होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इस प्रकार अत्यधिक ताप और भयानक आंधियों के पश्चात् उनसे भी अधिक भयंकर घने मेघ आकाश में उत्पन्न होते हैं और घनघोर वर्षा द्वारा इस संसार के जल-प्लावित होने का भय उत्पन्न हो जाता है, जिससे इस सृष्टि के डूबकर नष्ट होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं (मत्स्यपुराण, 165/15)। ब्रह्मपुराण (232/14-19) में इसी प्रकृति-प्रलय की संभावनाओं को प्रदर्शित करते शार्दूल-मुनि ने पर्यावरण रक्षा के लिए विश्व को सचेत रहने का उपदेश किया है और भौतिक पर्यावरण में इनकी रक्षा का उपाय बताते हुए, इनके स्थान क्रम को इस प्रकार परिगणित किया है-

[33,34]1. पृथ्वी मंडल, 2. जल मंडल, 3. तेजो मंडल, 4. वायु मंडल और 5. आकाश मंडल। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार हैं-

पृथ्वी मंडल

इस संदर्भ में भूमि, वन, प्राणी, पर्वत, ग्रह और ऋतु आदि का समावेश किया गया है। प्राकृतिक पदार्थों का विशिष्ट उपभोक्ता मनुष्य ही है। उपभोग की अधिकांश वस्तुएं इस प्रकृति में हैं, इसलिए भौतिक पर्यावरण में प्रथम स्थान में परिगणित पृथ्वी आदि शब्द विचारणीय है। पृथ्वी के अनेक गुणों के कारण उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उसमें अभिहित अर्थों की ओर संकेत करते हैं। उक्त नामों में से कुछ नामों पर संहिता ग्रंथों एवं वैदिक व्याख्यापरक वाङ्मय में विवेचना की गई है। यहां स्थानाभाव के कारण उनके केवल संदर्भ दिए गए हैं। यथा- पृथ्वी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। प्राणी जिस पर बसते हैं और जिसके आधार पर जीवन पाते हैं, वह भूमि निश्चय ही वंदनीय एवं अतिशय उपयोगी है। इसीलिए पृथ्वी को माता कहकर नमन करने का संकेत वेदमंत्रों में है (अथर्ववेद, 12/1/23/2/5, ऋग्वेद, 10/18, 10/11यजुर्वेद 9/22, 13/18, 36/13 व अथर्ववेद, 12/1/1-3, 12/1/6, 10/12, 6/21/1)। पृथ्वी के अत्यधिक महत्व का प्रतिपादन आधुनिक पर्यावरणविदों ने भी किया है। भूमि या मिट्टी सर्वाधिक मूल्यवान संसाधन हैं, क्योंकि विश्व के 71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ मिट्टी से ही पैदा होते हैं। 2 प्रतिशत भाग में ही कृषि योग्य भूमि है, जो निम्न प्रकार है-

1. कृषि भूमि - भूमंडल का 2 प्रतिशत- 71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
2. वन भूमि- भूमंडल का 8.8 प्रतिशत- 10.4 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
3. घास मैदान- भूमंडल का 7.2 प्रतिशत- 12 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
4. दलदल व मरुस्थल-भूमंडल का 10.4 प्रतिशत- 3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
5. समुद्र- 71.8 प्रतिशत- 3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमि या मिट्टी एक अतिसीमित किंतु मूल्यवान संसाधन है। खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धि के लिए इस सीमित संसाधन को प्रदूषण से बचाना आज की अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रदूषण रहित भूमि एवं उसका संरक्षण

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबंधी विभिन्न विचार उपलब्ध हैं। उनमें ऋषि द्वारा विद्वानों को सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मंत्रों से भूमि को धारण करने का निर्देश दिया गया है (ऋग्वेद, 1/67/3)। उनमें राजा को आदेश दिया गया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करें (ऋग्वेद, 3/51/5 तथा 3/55/22)। यजुर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमि को अपने दुष्कर्मों से न बिगाड़ें, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। भूमि की हिंसा हम और हिंसा हमारी भूमि न करे (यजुर्वेद, 10/23)। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट न होने दें। हे भूमि, हम तेरी खुदाई करें, वह शीघ्र

भर जाए, हम तेरी हिंसा न करें (अथर्ववेद, 12/1/34-35)। भूमिसूक्त के ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यज्ञ भूमि में देवताओं के लिए हम अलंकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमि में मरणशील मनुष्य स्वधा और अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोग और सब रोग से रहित हो। दीर्घकाल तक जागते हुए हम अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएं (अथर्ववेद, 12/1/22 तथा 12/1/62)।[33,34]

भूमिसूक्त का ऋषि हमें बताता है कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयोग होने वाली भूमि का संरक्षण करने से वह सुखद होती है। हे भूमि, तुम्हारी पहाड़ियां, हिमाच्छादित पर्वत, वन, पुष्टि देने वाली भूरे रंग की मिट्टी, कृषि-योग्य काली मिट्टी, उपजाऊ लाल रंग की मिट्टी अनेक रूपों वाली, सबका आश्रय स्थान, स्थिर भूमि पर अजेय, अवध्य और अक्षत रहकर हम निवास करें (अथर्ववेद, 12/1/11)। वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि के लिए कृषकों एवं वैज्ञानिकों की प्रेरणा दी गई है कि वे उसकी उर्वरा-शक्ति बनाए रखने के लिए पर्यावरण-प्रदूषित करने वाले खाद के स्थान पर, गोबर-खाद प्रयुक्त खेती को ही उत्तम फलवती मानकर, मधुर अन्न उत्पन्न करने वाले खाद के स्थान पर उन्नत करें। बार-बार बुआई से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होने की ओर संकेत किया गया है कि सब कुछ देने वाली जिस विस्तृत पृथ्वी की जागरूक, विविध व्यवहारों में कुशल विद्वान प्रजाजन प्रमादरहित होकर रक्षा करते हैं, उस भूमि को हम प्रिय मधु दिया करें तथा हम उसके तेज को बढ़ाएं (अथर्ववेद, 19/31/2 तथा 12/17)।

प्रदूषण रहित प्राचीन कृषि विज्ञान

वेदों में सर्वप्रथम भूमि संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषणरहित रखने के लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रति निषेध किया गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्न के बीज बोने का निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर-खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित करके बोएं ताकि अन्न भी रोगरहित होकर मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाए। वहां निर्देश दिया गया है कि खेतों को घी, मीठा, और जल आदि से संस्कारित करें। यहां मीठा का अर्थ शहद या शक्कर से लिया गया है। प्रदूषणरहित कृषि ही राष्ट्र निवासियों को बलवान बनाती है। इसलिए राजा को भी आदेश दिया गया है कि राजा हमारे लिए ऐसी खेती को सदैव बढ़ावा दें, उसे प्रोत्साहित करें। मनुष्यों में तेज और बल बढ़ने से ही उत्तम राष्ट्र उन्नतिशील होता है और यह संभव होता है प्रदूषणरहित कृषि अपनाने से (ऋग्वेद, 10/101/3, 4 तथा यजुर्वेद 4/10, 12/69/70, 23/46 एवं अथर्ववेद 8/10/12 व 3/12/4)।

यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण

भूमि प्रदूषण निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर सुख देने वाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विस्तृत द्युलोक तथा भूमि हमारे इस यज्ञ का सेवन

करे और वे यज्ञ से पोषण प्राप्त कर, हमारे भरण-पोषण करें। क्योंकि यजमान द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ वर्षाकारक इंद्र की शक्ति को बढ़ाता है और भू-लोक को विविध अनाज आदि से पुष्ट करता है (ऋग्वेद 1/22/13 तथा 8/14/5)।

प्रदूषण से भूमि फलवती नहीं होती, जिसे आचार्य सायण ने अनृत का परिणाम लिखा है। उन्होंने कहा है कि सत्यविरोधी अधर्माचरण से भू[35,36]

विचार-विमर्श

प्रकृति-प्रेम एवं प्रकृति-संरक्षण की चिंतनधारा भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है। भारतीय ऋषि-मनीषियों को प्रकृति एवं पर्यावरण प्रणाली का संपूर्ण एवं समग्र ज्ञान था। इन्हें प्रकृति, जीव के आपसी संबंधों तथा इन संबंधों से उत्पन्न परिणाम एवं प्रभावों का पूर्ण अनुभव था। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता के गरिमामय पद से अलंकृत किया जाता है और इसके पंचतत्वों से बने भौतिक घटक तथा वृक्ष-वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर पूजा की जाती है।

वेद, रामायण एवं महाभारत में वृक्षों के प्रति मनोरम कल्पना की गई है। महाभारत के भीष्म पर्व में वृक्ष को सभी मनोरथों को पूरा करने वाला कहा गया है, 'सर्वकाम फलाः वृक्षाः'। विष्णु धर्मसूत्र, स्कंदपुराण में वृक्ष के काटने के अपराध माना गया है। वृक्षों की भांति यहां पशु-पक्षियों के प्रति भी सुरक्षा एवं संरक्षण के साथ समुचित सम्मान का भाव सन्निहित है। वन्य पशुओं को भी यही सम्मान प्राप्त है।

प्रकृति और पर्यावरण की इन्हीं सब विशेषताओं के कारण यहां पर पर्यावरण-संरक्षण और इसके विकास के प्रति निरंतर जागरूकता बनी रही है, परंतु पर्यावरण के प्रति इस भावधारा के लुप्त होते ही शोषण और शोषक रूपी आत्मघाती मनोवृत्ति पनपी, जिसके अभिशप्त परिणाम से सभी अवगत हैं। यही कारण है कि आज स्वस्थ समाज के लिए पर्यावरण का अध्ययन नितांत आवश्यक हो गया है। मानव पर्यावरण का अभिन्न अंग है। प्रकृति और पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने, इसे फिर से संरक्षित, सुरक्षित और समृद्ध करने के लिए हमें इनके प्रति फिर से भावनात्मक संबंध स्थापित करने होंगे। प्राचीन भारतीय संस्कृति की मान्यताओं को सामयिक परिप्रेक्ष्य में समय की कसौटी पर कसकर फिर से हमें 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' का उद्घोष करना होगा। हमें प्रकृति और पर्यावरण के हर घटक को देवतुल्य मानकर इसको संरक्षित एवं विकसित करने का प्रयास-पुरुषार्थ करना होगा। यही युग का आह्वान है-

शांता द्यौः शांता पृथिवी

शांतमिदंभुर्वशंतरिक्षम्।

शांता उदंवतीरापः

शांता नः संत्वोषधीः॥

-अथर्ववेद, 21/9/1

अर्थात् अत्यधिक उष्णता वाला प्रकाश शांत हो, पृथ्वी की उथल-पुथल शांत हो, अंतरिक्ष शांत हो, उत्तम जल वाली उफनती नदियां शांत हों, औषधियां शांत हों। वेदकर्ता का कहना धरती पर और धरती तथा आकाश के मध्य जहां कहीं भी प्राकृतिक

विपदाएं आएँ, वे प्राणिमात्र के लिए शांतिदायक हों। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली समस्त औषधियां प्राणी के दुःख को शमन करने वाली हों अर्थात् ईश्वर ने जिस प्रकृति की सृष्टि की है, वह प्राणिमात्र के लिए सुखकारी हो। इस प्रकार का भावनात्मक संबंध हमें वेदों में देखने को मिलता है। प्रस्तुत लेख में अथर्ववेद को केंद्र में रखकर जल के सदर्भ में अध्ययन किया गया है।

'पर्यावरण' दो शब्दों - 'परि' अर्थात् बाहर अथवा चारों ओर और 'आवरण' अर्थात् घेरा के योग से बना है। इस प्रकार पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ हुआ, 'वह आवरण जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है।' 'प्रकृति के अंतर्गत जो कुछ भी हमें दिखाई पड़ता है, वह पर्यावरण का एक अंग है। जल, वायु, मृदा, पर्वत, नदी, झील, तालाब, समुद्र, पेड़-पौधे एवं जीव-जंतु सभी पर्यावरण के ही अभिन्न अंग हैं। पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। कोई भी जीव अपने पर्यावरण से अलग रहकर जीवनयापन नहीं कर सकता। आवास, पोषण, जल, श्वसन, प्रजनन आदि प्रक्रियाएं संप्रति पर्यावरण से ही संभव हैं। 'किसी भी जीव व जीव समूह के चारों ओर विद्यमान परिस्थितियां, जो उस जीव या जीव-समूह को प्रभावित करती हैं, उसका पर्यावरण कहलाती हैं। मानव भी चूंकि एक जीवधारी है, अतः अन्य जीवों की भांति वह भी पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। भौतिक घटक जैसे खनिज, जल, वायु, मृदा, प्रकाश, तापक्रम, आदि तथा वे सभी जैविक घटक जैसे सूक्ष्म या बड़े जीवधारी, जिनसे हमारा प्रत्यक्ष रूप से संपर्क होता है, हमारे पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारा पर्यावरण वह भौतिक व जैविक संसार है, जिसमें हम निवास करते हैं।' वैदिक ऋषि अथर्वा, वाचस्पति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं-[37]

ये त्रिसप्ताः परियंति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में।।

अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, तन्मात्रा और अहंकार - ये सात पदार्थ और सत्, रज तथा तम ये तीन गुण, इस प्रकार जगत् में तीन गुणा सात 'इक्कीस' देवता सब ओर आवागमन करते हैं। वाणी के स्वामी ब्रह्मा उनके अद्भुत बल को हमें प्रदान करें। इस मंत्र में प्राकृतिक शक्तियों से बल प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की गई है।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता इस सदी की सबसे गंभीर समस्या का रूप धारण करके मानव के समक्ष प्रस्तुत है। मानव सृष्टि का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के द्वारा मनुष्य ने बहुत प्रगति की, किंतु प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन भी हुआ। आज स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि समस्त पृथ्वी का अस्तित्व संकट में है। पर्यावरण संरक्षण हेतु धर्म एवं धार्मिक निर्देशों और विज्ञान का समन्वय करना अतिआवश्यक हो गया है। मानव ने बुद्धि एवं चिंतन द्वारा असीमज्ञान अर्जन किया है। इस ज्ञान को दो धाराओं में विभक्त किया जा सकता है-

1. अंतर्बोध पर आधारित आध्यात्म अथवा धर्म।
2. अवलोकन, विश्लेषण एवं तर्क पर आधारित भौतिक जगत् से संबंधित निष्कर्ष जिसे विज्ञान कहा जाता है।

संपूर्ण ब्रह्मांड को जानने-समझने की मानव की असीम जिज्ञासा के फलस्वरूप विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। मानव के चारों ओर जो कुछ भी भौतिक पदार्थ हैं, उनसे मिलकर उसका पर्यावरण निर्मित होता है, जिसमें जल, वायु एवं पृथ्वी तथा जैविक तत्व सम्मिलित हैं। आदर्श स्थिति में इन सबमें परस्पर संतुलन होना अनिवार्य है, तभी जीवन-चक्र सुचारु रूप से गतिमान रहते हुए विकसित होता रह सकता है। जल, वायु, मृदा (धरती) एवं जैविक तत्वों में किसी प्रकार का अवांछनीय भौतिक अथवा रासायनिक परिवर्तन जीवन-चक्र में व्यवधान उत्पन्न करता है। इसी को प्रदूषण कहा जाता सकता है।

विज्ञान-विकास एवं पर्यावरण

विज्ञान की प्रगति के साथ उस अर्जित ज्ञान के उपयोग की कला ने तकनीक को जन्म दिया और इसी तकनीकी ज्ञान ने मानव को एक ऐसा अस्त्र दे दिया, जिससे वह इस धरती का असीम शक्ति-संपन्न, निरंकुश स्वामी बन बैठा, जिसके फलस्वरूप उसने पृथ्वी के संसाधनों का अविवेकपूर्ण दुरुपयोग किया। विकास की सामान्य अवधारणा अधिक-से-अधिक आर्थिक एवं भौतिक संपदा अर्जन करना एवं सुख-सुविधा युक्त जीवन माना गया है। अनियमित विकास के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा। पृथ्वी अपने संसाधनों की एक सीमित मात्रा तक पर्यावरण को संतुलित रखने की क्षमता रखती है, परंतु इसके पश्चात पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न होना अवश्यभावी है और आज उसी विकट परिस्थिति से संपूर्ण विश्व आक्रांत है। निश्चित रूप से यह स्थिति एकाएक उत्पन्न नहीं हुई, वरन्, बहुत धीमी गति से औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है।[38]

धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण

मानव ज्ञान के अंतर्बोध पर आधारित धारा, जिसे आध्यात्म अथवा धर्म का नाम दिया गया है, मानवीय समस्याओं, विशेष रूप से पर्यावरण के संबंध में अत्यंत मुखर हैं। विशेष रूप से भारतीय चिंतन में पर्यावरण के संबंध में उस काल के मनीषियों की दूरदृष्टि आश्चर्यजनक है। वैदिक धर्म-शास्त्रों से लेकर जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, सिख आदि धर्म में किसी-न-किसी रूप में ऐसी शिक्षाओं का समावेश है, जिनके अनुसार आचरण करने से पर्यावरण का संरक्षण स्वतः हो सकता है, क्योंकि धर्म और विज्ञान, ज्ञान की दो अलग धाराएं होने पर भी एक ही लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हैं। धर्म के संस्पर्शन से विज्ञान विश्व को सुख-शांति देने की क्षमता रखता है।

इस दृष्टि से हिंदू धर्म-ग्रंथ एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि उनकी मूल भावना ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा पर आधारित है। हिंदू धर्म के मूल सिद्धांत वेदों पर आधारित हैं। वैदिककाल के मनीषियों को अपनी अंतर्चेतना से शायद यह ज्ञात था कि मानव अंततः अपने लिए भयंकर समस्याएं उत्पन्न कर लेगा, जिससे उसका विनाश हो सकता है। उन्होंने पहले ही इसके लिए सचेत कर दिया था।

प्रस्तुत लेख में 'जल को अध्ययन का विषय बनाया गया है। यह अध्ययन अथर्ववेद पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण को महत्व करना अत्यंत पुनीत कार्य माना गया है। यह किसी आराधना से कम नहीं है। पर्यावरणविद् एवं मनोविज्ञानी

इस तथ्य से भलीभांति परिचित हैं कि मानवीय व्यक्तित्व के त्रिविध आधार-भौतिक, जैविक और मानसिक-तीनों परिवेश पर्यावरण से गहराई से जुड़े हैं। अंतःकरण का प्रकृति से संबंध है। आज इसी क्षेत्र में खोज जारी है। इसके निष्कर्ष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि पर्यावरण असंतुलन हमारे मन, भावना आदि को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता।

आज हमारी धरती संकट में है। संकट में जल, वायु, मृदा आदि भी हैं और मानव भी संकट से घिरा हुआ है। आखिर ऐसा क्यों है? किस कारण से मानव के साथ पर्यावरण भी महामारी का दंश झेलने को विवश है। धरती माता एवं उनकी संतानें-जलचर, नभचर, उभयचर एवं पेड़-पौधे भी अपने अस्तित्व के खतरे से डरे-सहमें हुए हैं। यह सभी पर्यावरण के विनाश के कारण घट रहा है। विकास के नाम पर अपनी धरती के प्रत्येक कोने पर मानव ने विनाश ही किया है। नदी-नाले, पहाड़-पर्वत, जंगल-झरमुट, सागर-महासागर, रेगिस्तान एवं यहां तक कि हमने वीरान ध्रुव प्रदेश को भी नहीं छोड़ा है। धरती पर जीवन को संचालित करने वाले लगभग दो-तिहाई कुदरती घटक छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। प्रकृति का जर्जा-जर्जा जल, वायु और जीवन के लिए जरूरी पोषक तत्व प्रदान करने वाला पारिस्थितिकी-तंत्र बेहाल एवं बर्बादी के कगार पर खड़ा हुआ है। धरती की कुल 24 पारिस्थितिकी-प्रणालियों में से 15 पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। इससे पर्यावरण में बेहद असंतुलन आ चुका है। यही कारण है कि बरसात के मौसम में सूखा, गर्मी में बर्फ गिरती है, ठंड में लू और हवाएं चलती हैं। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से हमें तात्कालिक लाभ तो मिलता है, परंतु पर्यावरण विनाश के रूप में इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है।[39]

जल – संसाधन

वर्षा के जल का कुछ भाग भूमि सोख लेती है, जिसे भूमिगत जल कहते हैं तथा शेष जल ढालू सतह से बहना प्रारंभ कर देता है। इसे बहता हुआ जल कहते हैं। जैसे – नदी, नाला, झरना, सोता आदि। इस प्रकार भू-पृष्ठ के ऊपर तथा भूगर्भ के आंतरिक भागों में मिलने वाले समस्त जल-भंडारों को जल-संसाधन कहा जाता है। जल ही जीवन है। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानव, जल का उपयोग पीने के अतिरिक्त स्नान करने, कपड़े धोने, मछली, पालने, सिंचाई, परिवहन आदि कई कार्यों में करता है। जल की सहायता से ही मानव मिट्टी पर कुछ पैदा कर सकता है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले जल-संसाधन दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं-

1. सामुद्रिक अथवा लवणीय जल,
2. स्वच्छ अथवा अलवणीय जल।

पृथ्वी का $\frac{3}{4}$ भाग (72 प्रतिशत) समुद्री जल से घिरा है। यह विशाल एवं प्राचीनतम पारिस्थितिकी-तंत्र है। इसकी औसत गहराई 3.5 किलोमीटर है। यह खारा है तथा पीने योग्य भी नहीं है। यह खेती एवं उद्योग के लिए भी उपयुक्त नहीं है। यह लवणीय जल मछलियों एवं समुद्री जीवों के रहन-सहन तथा जल-परिवहन के लिए ही उपयुक्त है। जल की लवणता लगभग 3.5 प्रतिशत यानी एक लीटर जल में पैंतीस ग्राम लवण घुला होता है, जिसमें मुख्य सोडियम क्लोराइड (27 प्रतिशत) है। इसके

अतिरिक्त अन्य उपस्थित लवण मैगनीशियम, पोटैशियम, कैल्शियम आदि हैं।

संपूर्ण पृथ्वी पर सिर्फ 3 प्रतिशत जल ही पीने योग्य है, जिसका 24.4 भूमि में, 0.4 प्रतिशत नदियों, झीलों, तालाबों, कुओं आदि में था 77.2 प्रतिशत ध्रुवों के हिमखंडों में बर्फ के रूप में जमा रहता है। इसका उपयोग पीने के अतिरिक्त कृषि व उद्योग के लिए होता है। सभी स्वच्छ जल में लवण का प्रतिशत 0.05 अथवा एक लीटर जल में 0.5 ग्राम से कम मिलता है। स्वच्छ जल का विशिष्ट गुण इसकी निम्न लवणता है।

जल-संसाधन का मानव के लिए उपयोग

जल संसाधन मानव के लिए निम्न उपयोग हैं-

1. जमीन के लिए जल स्वयं परम् आवश्यक पोषक तत्व है, अनेक भोज्य पदार्थों की प्राप्ति जल संसाधनों से ही होती है। मत्स्य व्यवसाय जल पर ही आधारित है।
2. कृषि एवं उद्योग-धंधों का आधार है, सिंचाई के लिए आवश्यक है।
3. जीव-जंतुओं का आवास-स्थल है। इसके अतिरिक्त इन्हें अपनी वृद्धि एवं पोषण के लिए जल की आवश्यकता होती है।
4. अनेक प्रकार के खनिजों जैसे-नमक, चूना आदि की प्राप्ति होती है। जापान में मोतियों के लिए मोती सीप पाली जाती है।
4. जल विद्युत तथा वाष्प-शक्ति के उत्पादन में सहयोग करता है।
5. यह जलवायु के नियमन और ऊष्मा के असीम भंडार का शोषण करने की क्रिया में भाग लेता है।
6. जल द्वारा वायुमंडल में आर्द्रता बढ़ती है तथा तापक्रम सामान्य बनाने में सहयोग करता है।
7. जलीय-पौधों की खेती करने के लिए एवं मवेशियों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।
8. शहर की नालियों की गंदगी को बहाने के लिए, नाव द्वारा यातायात के लिए नहाने-धोने के लिए आवश्यक है।
9. जल दैनिक उपयोग की वस्तु है। पीने, भोजन बनाने के काम आता है।
10. समुद्र यातायात में भारी बचत करता है। नौपरिवहन मानव को यात्रा करने, भारी-से-भारी माल ढोने में सहयोग देता है।
11. समुद्र के गर्भ से करोड़ों टन तांबा, लोहा, निकिल, मैगनीज, मूंगा, कोयला, पेट्रोल, विभिन्न गैसों प्राप्त होती हैं। मछलियों के अतिरिक्त विभिन्न जलीय वनस्पतियां जैसे-शैवाल आदि भारी मात्रा में मौजूद हैं। कुछ अन्य बहुमूल्य धातुएं जैसे-सोना, चांदी आदि समुद्र की गहराई में चट्टानों के रूप में मिलते हैं। अभी समुद्री जल से सीमित मात्रा में नमक, आयोडीन, मैगनीशियम आदि ही निकाले जा रहे हैं।[40]

अथर्ववेद में सबसे अधिक जल को महत्व दिया गया है। वैदिक ऋषि कहता है, 'यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि सभी जड़-चेतन का धारण और पोषणकर्ता पर्जन्य सृष्टि का पिता और समस्त तत्वों से परिपूर्ण पृथ्वी इसकी माता है। इनसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है। बादल जड़-चेतन को धारण और पोषण करने वाला है। मेघ सैकड़ों सामर्थ्यवाला और आत्मबल की शक्ति से युक्त है। जल के अधिष्ठाता देवता बादल का आह्वान करता हुआ ऋषि कहता है कि जो समुद्र का पान करके, वृष्टि कर हवि प्रदान करता है और जहां बहने वाली जलपूर्ण नदियों और जलाशयों के जल का सेवन कर हमारी गौएं तृप्त होती हैं। जल के औषधीय महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि रोग-निवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थ जिस जल से उत्पन्न होते हैं, वह जल अमृतरूपी औषधियों से परिपूर्ण है। उसके दिव्य गुणों से गौएं और अश्व बलवान होकर उपकारी होते हैं।'-

अप्स्वंतरमृतमप्सु भेषजम्।

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ

वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः।।

जल सुख प्रदाता है, परब्रह्म से साक्षात्कार करने, सुख का उपभोग करने और रमणीय तत्वों का दर्शन करने के लिए वैदिक ऋषियों ने उसकी प्रार्थना की है। वे कहते हैं कि हम वृद्धि प्रदान करने वाले उस जल का सान्निध्य पाना चाहते हैं, जो अन्नादि उत्पन्न करके प्राणिमात्र को पोषण देने वाला है। प्राणिमात्र की व्याधियों का औषधियों द्वारा निवारण करने वाला जल दिव्य गुणों से युक्त एवं सुख-साधनों का स्वामी है। हम उस औषधीय जल की उपासना करते हैं-

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।

महेरणाय चक्षसे।

तस्मा अरं गमाम के यस्यक्षयायजिन्वथ।

आपो जनयथा च नः।

ईशाना वार्याणं क्षयंतीश्वर्षणीनाम।

अपो याचामि भेषजम्।।

जिस प्रकार माताएं प्रेम से अपनी संतानों को दूध पिलाकर पुष्टि प्रदान करती हैं, उसी प्रकार जल में जो तत्वरूप परम् कल्याणकारी रस है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। दिव्यगुण युक्त जल अभीष्ट को सिद्ध करने वाला, सुखकारी, सेवन योग्य, शांति प्रदान करने वाला है। इसमें सब दिव्य औषधियां विद्यमान हैं। सौर जगत् को आनंद पहुंचाने वाला और कल्याण करने वाला अग्नि देवता भी उसमें अवस्थित है-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदंतदर्विश्वानि भेषजा।

अग्निं च विश्व शंभुवम्।।

रोगों के निवारणार्थ औषधियां प्रदान करने वाला जल, मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने वाला है। वैदिक ऋषि सिंधुद्वीप जल की प्रार्थना करता हुआ कहता है - निर्जल देश का जल हमारे लिए सुखकारी हो, जल वाले देश का जल सुख प्रदान करने वाला हो। भूमि आदि खोदकर निकाला गया कुएं का जल तथा घड़े में भरकर लाया गया जल सुख प्रदान करे। इसी प्रकार वर्षा से प्राप्त हुआ जल भी कल्याणकारी हो-

शं न आद्यो धन्वन्याः

शमु संत्वनूप्याः

शं नः खनित्रिभा आपः।

शमु याः कुंभ आभृताः

शिवा नः संतु वार्षिकी।।

अथर्ववेद का शंताति ऋषि जल की प्रार्थना करता हुआ कहता है- जो जल सुवर्ण की आभा से युक्त, अत्यंत रमणीय और पवित्र है, जिससे अग्नि और सविता देवता उत्पन्न हुए हैं तथा जो श्रेष्ठ वर्ण वाला जल अग्निगर्भ है, वह हमारी व्याधियों का समन करके हम सबको सुख और शांति प्रदान करने वाला हो। जिस जल में स्थित रहकर वरुण देव सत्य और असत्य का निरीक्षण करता चलता है और जो सुंदर वर्ण वाला जल अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह हमारे लिए शांति का दाता हो। इंद्रादि देवता स्वर्ग में जिस जल के सारभूत तत्व का तथा सोमरस का सेवन करते हैं, जो अंतरिक्ष में विविध रूप से वास करता है, वह अग्निगर्भा जल हम सबको सुख और शांति प्रदान करने वाला हो। हे जल के अभिमानी देवताओं! अपने कल्याणकारी नेत्रों द्वारा तुम हमें देखो और अपनी देह द्वारा हमारी त्वचा का स्पर्श करो। अमृततुल्य, तेजस्वी, शुद्ध और पवित्र जल हमें सुख और शांति प्रदान करने वाला हो-[34]

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकायासु जातः सविता यास्विग्निः।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवंतु।।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवंतु।।

यासां देव दिवि कृण्वन्ति भयं या अंतरिक्षे बहुधा भवन्ति।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्तान आपः स्योना भवंतु।।

शिवेन मा चक्षुषा पयश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।

घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवंतु।।

औषधि के निमित्त प्रयोगात्मक जल सुख प्रदान करने वाला तथा रोगों का शमन करने वाला है। अथवा ऋषि शत्रुओं के विनाश के लिए जल से प्रार्थना करते हुए कहते हैं- हे जल! तू अपने भीतर की ताप शक्ति के द्वारा उस शत्रु को शांत कर जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं। तू अपनी हरण शक्ति के द्वारा उसकी शक्ति को हर ले। हे जल! जो हमसे द्वेष करता है तथा जिससे हम विद्वेष करते हैं, तू अपने भीतर की प्रज्वलन शक्ति के द्वारा उस शत्रु को जला दे। हे संतप्त करने वाले जल! तू अपनी इस शक्ति के द्वारा उस मनुष्य को शोक-संतप्त कर, जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं। हे जल! जो हमसे द्वेष के कारण शत्रुता रखता है अथवा जिससे हम भी द्वेष करते हैं। हे जल! जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं, उस शत्रु को तू अपनी शक्ति द्वारा तेजविहीन कर दे-

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति

तपत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति

हरत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।

।आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत

योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।

आपो यद् वः शोचिस्तेन ते प्रति

शोचते योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।

आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं

कृणतु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।

सभी व्याधियों की औषधि में जल प्रमुख है। औषधि रूप में (स्नानादि के द्वारा) यह अनेक रोगों का शमन करता है। वैदिक ऋषि रोगियों से कहता है कि हे रोगिन! ऐसे जल से तेरे सभी क्षेत्रीय रोगों का शमन हो-

आप इद वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चंतु क्षेत्रियात्।।

जल को नदी भी कहते हैं। नदी क्यों कहते हैं, इस पर प्रकाश डालते हुए ऋषि कहता है- अच्छी प्रकार से सदा गतिशील रहने वाले जल! मेघ के ताड़ित करने पर इधर-उधर नाद करने के कारण तेरा नाम 'नदी' पड़ा। यह मान तेरे अनुरूप ही है-

यददः संप्रयतीरहावनदता हते।

तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वा नामानि सिंधवः।।

जल का पर्यायवाची 'आपः' है। इसके संदर्भ में भृगु ऋषि ने कहा है - वरुण द्वारा प्रेरित होकर जब तू नाचता हुआ-सा मिलकर चलने लगा, तब इंद्र ने तुझे प्राप्त किया, इसी कारण तेरा नाम 'आपः' पड़ गया-

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।

तदाप्रोदिद्रो वो यती स्तस्मादापो अनुष्ठनः।।

'वारि' के संदर्भ में कहा गया है - अपनी इच्छा के विरुद्ध इंद्र ने अपनी शक्ति के द्वारा तेरा वरण किया, अतः हे देवशील जल! तेरा नाम 'वारि' हुआ-

अपकामं स्पंदमाना अवीवरत् के हि किम।

इंद्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्गानाम वो हितम्।।

'उदक' के विषय में ऋषि ने कहा है-हे प्रभावित होने वाले

जल! इंद्र ने एक बार तुझ पर आधिपत्य जमाया। इंद्र के महत्व के कारण तूने स्वयं को बड़ा मानकर उदन किया, तभी से तेरा नाम 'उदक' पड़ा-

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्पंदमाना यथावशम्।

उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते।।

जल का आह्वान करता हुआ ऋषि कहता है कि हम अनुभव करते हैं और उच्चारित शब्द हमारे कानों में आ रहे हैं। हे सौंदर्यमय आभायुक्त जल! अमृत के समान तेरा सेवन करने के उपरांत हमें बड़ी शांति की अनुभूति हो रही है। हे जल! तुम्हारा हृदय सुवर्ण के समान है। हे प्रभावित धाराओं! ऋतु तुम्हारा पुत्र है। हे बल प्रदान करने वाली धाराओ! तुम यहां आगमन करो, ताकि हम तुम्हें प्राप्त कर सकें-[35]

आदिल् पश्याम्युत वाश्रुणोम्या मा घोषो गच्छति वाड्मासाम्।

मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः।।

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरी।

इहेत्यमेत शकरीर्येत्रेदं वेशयामि वः।।

ऋषि आकाश में स्थित जल देव से वृष्टि करने के लिए कहता है - हे वायो! हे सूर्य! हमारी हवि को तुम ग्रहण करो।

काश में स्थित जलदेव वृष्टि के द्वारा इस भूमि को सिंचित करो-

शुनासीरेह स्म में जुषेथाम्।

यद् दिवि चक्षुः पयस्तेनेमामुपसिञ्चतम्॥

सृष्टि के आदि में प्रकट होकर जलों ने जगत् की रक्षा की।

हिरण्यगर्भ से इन्होंने जगत् की रक्षा की। उन जलों के गर्भभूत प्रजापति को ये वैदिक ऋषि हविर्दान से संतुष्ट करते हैं-

आपो अग्रे विश्वभावन गर्भ दधाना अमृता ऋतज्ञाः।

यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

जल की महत्ता का वर्णन करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है- हे राजन्! सविता देवता तुझे उसी प्रकार समृद्ध करे, जिस प्रकार तू अपने बंधुओं को समृद्ध करता है। हे रसयुक्त दिव्य जल! तू अपने तेज से इसका अभिषेक करे। सागर में टापू की भांति व्याघ्र तथा सिंह जैसे पराक्रमी पशुओं को जल की यह दिव्य धाराएं परम् सौभाग्य के निमित्त प्रेरित तथा विभूषित करती हैं-

अभित्वा वर्चसासिचत्रापो दिव्याः पयस्वतीः।

यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वासविता करत्॥

एना व्याघ्रं परषस्वजानाः सिंह हविति महते सोभगाय।

समुद्रै न सुभुवस्तस्थिवांसं समृज्यंते द्वीपिनमप्स्वतः॥

जिस जल के रस से औषधियों की उत्पत्ति होती है, मरुद्रण उस जल की वर्षा कराएं। जल की धाराएं पृथ्वी को समृद्ध करें तथा उससे विविध प्रकार की औषधियां उत्पन्न हों-

समीक्षयंतु तविषाः सुदानवोऽयं

रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।

वर्षस्य सर्गा महंतु भूमिंपृथग्

जायंतामोषधयो विश्वरूपाः॥

ऋषि शंताति दिव्य जलों का आह्वान करते हुए कहते हैं- उत्तम कार्यों को करने वाले हम गतिमान जल-धाराओं में निरंतर प्रवाहित दिव्य जलों का आह्वान करते हैं। चारों ओर संव्याप्त, निरंतर गतिमान जल की धाराएं क्रियाशक्ति उत्पन्न करके हमें इन अनर्थों से मुक्ति दिलाएं, जिससे हम श्रेय प्राप्त कर सकें। सभी मनुष्य अपने-अपने नियत लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के कार्य सविता देवता की प्रेरणा से संपन्न करें। कल्याणप्रद औषधियां और उनको पुष्टि प्रदान करने वाले जल हमारे निमित्त कल्याणकारी एवं पापनाशक हो। बर्फ से ढंकी हुई पर्वतों की पापनाशक जलधाराएं गमन करती हुई समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। ये धाराएं हमारे हृदय की अग्नि को शांत करने वाली औषधियां प्रदान करें। हमारे चक्षुओं, एड़ियों और पांशुओं के अग्र भागों को जो-जो व्याधियां पीड़ित कर रही हैं, उन सब पीड़ाओं को वैद्य रूपी जल हमारे शरीर से निकाल बाहर करे। निरंतर बहती हे जलधाराओं! यह समुद्र तुम्हारा स्वामी और तुम इसकी पत्नियां हो। तुम रोगनिवारक औषधियां प्रदान करो, जिससे आरोग्य प्राप्त कर हम बल प्रदान करने वाले अन्नादि का उपभोग करने में समर्थ हों-[36]

सस्तुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्मृषीः।

वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुपह्वये।।

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चंति प्रणीतये।

सद्यः कृण्यन्तेवेतवे।।

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वंतु मानुषाः।

शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः।।

हिमवतः प्रस्त्रवंति सिंधौ सहम सङ्गमः।

आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृदद्योत भेषजम्॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पाषाणयोः प्रपदोश्च यत्।

आपस्तत् तर्व निष्करन् भिषजां सुभिषक्तभाः।।

सिंधुपत्नीः सिंधुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन।

दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुजजामहै।।

अथर्ववेद के ऋषि शंताति जल की स्तुति करते हुए कहते हैं- जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से भी सभी पापों का शोध करे। मातृरूप पोषक जल हमें पवित्र बनाए। घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करे। इस जल के द्वारा हम पवित्र होकर ऊर्ध्वगामी हों-

आपो अस्मान् मातरः सूदयंतु धूतेन नो धृतष्व पुनंतु।

विश्वं हि रिप्रं प्रवहति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।।

जल रोगों को दूर करने वाला है। अथर्वा ऋषि कहते हैं-जल रोग-निवारक ही नहीं, बल्कि जल ही रोगों के मूल कारण का नाश करने वाला है। सभी के लिए यह जल एक हितकारी औषधि है। वह जल तेरे रोगों का भी शमन करे-

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वंतु भेषजम्॥

वर्षा के जल की महिमा का वर्णन करते हुए भृगु ऋषि कहते हैं- वृक्ष के अग्र-भाग से हम पर गिरने वाली वर्षा के जल की बूंद वृक्ष के फल समान ही है। अंतरिक्ष से गिरी बूंद वायु के फल के समान है। शरीर के अंग पर अथवा पहने हुए वस्त्र पर उसका स्पर्श हुआ है, वह प्रक्षालनार्थ प्रयुक्त जल के समान पाव देवता को हमसे दूर करे-

यदि वृक्षादभ्यपप्तम् फलं तद्

यद्यंतरिक्षात् स उ वायुरेव।

यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वासस्,

आपो नुदंतु निर्ऋति पराचै।।

वह अमृत वर्षा उबटन, सुगंधित द्रव्य, चंदनादि सुवर्ण धारण तथा वर्चस की भांति समृद्धि रूप है। यह पवित्र करने वाली है। इस जल के स्पर्श मात्र से ही पाप देवता और शत्रु हमसे दूर-दूर रहें-

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तद् पूत्रिममेव।

सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मातारोर्ऋतिमो अरातिः।।

वैदिक ऋषि जल से शक्ति की याचना करता हुआ कहता है-सूर्य के सान्निध्य में रहने वाला वाष्पीकृत जल यज्ञ की सफलतापूर्वक संपन्नता के निमित्त शक्ति प्रदान करे। ऋषि आगे कहता है-हम उस जल के अधिष्ठाता देवता का आह्वान करते हैं, जो समुद्र का पान करके, वृष्टिकर हवि प्रदान करता है और जहां बहने वाली

जलपूर्ण नदियां और जलाशयों के जल का सेवन कर हमारी गौं तृप्त होती हैं-

अमूर्या उप सूर्य याभिर्वा सूर्यः सह।

ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्।।

अपो देवीरूप ध्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।

सिंधुभ्यः कर्त्वं हविः।।

ऋषि बादल से प्रार्थना करता हुआ कहता है-अपने में जल को धारण करने और अकाल में नीचे न गिरने देने वाले हे पर्जन्य! सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले हम तुझे नमन करते हैं। तू हमारे भीतर तप को एकत्रित करने वाला तथा पातकों पर वज्र से प्रहार करने वाला है। तू हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुखी करता हुआ हमें भी सुख प्रदान करे। ऊपर से नीचे न गिरने देने वाले हे पर्जन्य! तुझ सहित हम तेरे वज्र को भी नमस्कार करते हैं। तू जिस हृदयरूपी गुहा में स्थित रहा है, वह हमें ज्ञात है। सागर में नाभि की भांति तू स्थित रहता है-[37]

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि।

मृउया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि।।

प्रवतो नपात्रम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये वपुषे च कृष्णः।

विदम् हे धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अंतर्निहितासि नाभि।।

वैदिक ऋषि बादलों के विषय में कहता है- हे पर्जन्य देवता! गर्जनशील मरुद्रण तेरे स्तोता हों। बरसते हुए मेघों की धाराओं से तू पृथ्वी को भिगो दे। हे मरुद्रणों! सूर्य के ताप द्वारा मेघों को तुम समुद्र के ऊपर की ओर प्रेरित करो। बैलों के समान गर्जनशील जल के प्रवाह से तुम भूमि को तृप्त करो। हे गर्जनशील पर्जन्य देवता! तू औषधि रूप वनस्पतियों में गर्भ की स्थापना करता है। तेरे द्वारा प्रेरित मेघ जलपूर्ण वृष्टि को लाएं, तब अपनी रश्मियों को सूक्ष्म करता हुआ सूर्य लोप हो जाए-

गणास्त्वोप गायंतु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।

सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षंतु पृथिवीमनु।।

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।

महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवी तर्पयंतु।।

अभिक्रंद स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि।

त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशरिषी कृशगुरेत्वस्तम्।।

ऋषि कहता है- हे मनुष्यों! श्रेष्ठ दानकर्ता तुम्हें तृप्त करें। अजगर के समान मोटे जल-प्रवाह प्रकट हों तथा वायु के द्वारा प्रेरित मेघ पृथ्वी पर उत्तम प्रकार से बरसें। सभी दिशाओं में विद्युत चमके और वायु संचरण करे, तब वायु द्वारा प्रेरित मेघ-भूमि की ओर अनुकूलता से आगमन करें। हे उत्तम दानशील मरुतो! अजगर की भांति आकार वाला जल-प्रवाह विश्व को शांत (तृप्त) करे और तुम्हारे द्वारा प्रेरित मेघ भूमि की रक्षा करे-

सं वोऽवंतु सुदानव उत्सा अजगरा उत।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षंतु पृथिवीमनु।।

आशामाशां वि द्योततां वाता वातुं दिशोदिशः।

मरुदभिः प्रच्युता मेघाः सं यंतु पृथिवीमनु।।

आपो विद्युदध्रं वर्ष सं वोऽवंतु सुदानव उत्सा अजगरा उत।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावंतु पृथिवीमनु।।

प्रजापालक सूर्य! तू समुद्र के जल को प्रेरित करता हुआ समुद्र को गति प्रदान करे। उसके द्वारा अश्व की भांति गति वाले तथा बरसने वाले मेघों से जल की वृष्टि हो। हे पर्जन्यदेव! तू इन गर्जनशील मेघों सहित हमारे सम्मुख आगमन कर। वर्षा का जल लेकर सूर्य तिरछी वर्षा करता हुआ प्राणों को तृप्त करे। उस समय ध्वनि करने वाले जल-प्रवाह चले। हे वरुण! तू भी पृथ्वी पर आने वाले मेघों को जल से अलग कर। फिर तृणहीन भूमि पर श्वेत भुजा वाले मेंढक आकर शब्द करें। गुप्त अवस्था में रहने वाले व्रती-तपस्वियों के समान रहने वाले मंडुकगण पर्जन्य को प्रसन्न करने वाले वचनों का उच्चारण करें-

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाय ईरयन्नुदधिमर्दयाति।

प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽवडितन स्तनयित्नुनेहि।।

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसंतु गर्गरा अपां वरुणाव।

नीचीरपः सृज वदंतु पृश्नबाहवो मंडूका इरिणानु।।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।

वाचं पर्जयजिंवातां प्र मंडूका अवादिषु।।

अपने जलरूपी महान कोष को मुक्त करने वाले हे पर्जन्य देव! तू उसे नीचे की ओर बहा, ताकि ये जल से परिपूर्ण नदियां बाधित न होती हुई पूर्व दिशा की ओर बहने लगे। छावापृथ्वी को तू जलराशि से युक्त कर, जिससे पशुओं को उत्तम पेय और हमें धान्यादि तथा औषधियां प्राप्त हों-

महांतं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः

तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्ट आनंदिनीरोषधयो भवंतु।।

नदी की स्तुति करता हुआ ऋषि कहता है- पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल को प्रवाहित करने वाली पवित्र नदियां अन्न और बलादि से मनुष्यों का कल्याण करती हैं-

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तं वमिंद्रमेव।

स्वसारौमातरि भवरी अरिप्रेहिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च।।

ऋषि ने केवल जल, पर्जन्य एवं नदी का ही वर्णन नहीं किया, अपितु उन्होंने बिजली के विषय में भी लिखा है- विद्युत (देवी) को, गड़गड़ाहट रूपी ध्वनि और अशानि को, गरजन वाले मेघों को हमारा नमन है। हे विद्युत देवी! तू दुःखी करने वाले दुर्जनों आदि को अपने वज्र के घातक प्रहार से दूर कर-

नमस्तेऽस्तु विद्यते नमस्ते स्तनयित्वे।

नमस्ते अस्त्वश्मने येन दूडाशे अस्यसि।।

आक्रमणकारियों का संहार करने के लिए इंद्र आदि समस्त देवताओं ने शक्तिशाली और दिव्य बाण के रूप में तेरी रचना की है। आकाश में चमकने और गर्जना करने वाली हे अशाने! हम तुझे नमन करते हैं। तू हमें सुखी और भय-मुक्त कर-

यां त्वा देवा असृजंत विश्व

इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्।

सा नो मृउ विदथे गुणाना

तस्यै ते मृउ विदथे गुणाना

तस्यै ते नमो अस्तु देवि।।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों ने पर्यावरणीय प्रकृति घटक जल में, वर्षा में, नदियों में, पर्जन्य में और बिजली एवं समुद्र में देवत्व की अवधारणा विकसित की है, क्योंकि देव तत्व मनुष्य के कल्याण के लिए हैं। यह जल अपने विभिन्न रूपों में जड़चेतन के कल्याण के लिए है। संपूर्ण प्रकृति समस्त प्राणियों के लिए है, वे अपने लिए नहीं है। उनकी पूजा का महत्व इसीलिए है। इसी देवत्व की भावना को विकसित करना तथा अपने मनोगत पर्यावरण की दूषित भावना को बदलना होगा।

पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में अथर्ववेद में दिए गए निर्देशों तथा इसी संदर्भ में वैज्ञानिक विचारों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि मानव ने न तो वैदिक निर्देशों का ही पालन किया और न वैज्ञानिक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष को ही कभी गंभीरता से ग्रहण किया। वैदिक निर्देश केवल कर्मकांडों तक सिमटकर रह गए एवं वैज्ञानिक चिंतन तथा निष्कर्ष वाद-विवाद का मुद्दा भर बनकर रह गए। वैदिक निर्देशों के अनुसार जल की जीवनदायिनी शक्तियों की पूजा का विधान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि हम जिसे पूजते हैं, उसके प्रति हमारी भावना आदर एवं सम्मान से युक्त होती है। उसे कलंकित व प्रदूषित करने के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता।[38]

इसी प्रकार वैज्ञानिकों ने भी सारी परिस्थितियों का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करने के उपरांत समय-समय पर चेतावनी दी है, परंतु विकास की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सब कुछ भुला दिया गया। वास्तविकता के धरातल पर देखा जाए तो असली समस्या की जड़ नीति-निर्धारण के स्तर से आरंभ होती है। नीति-निर्धारण राजनीतिज्ञों का कार्य होता है और राजनीतिज्ञों का लक्ष्य अपने छोटे से कार्यकाल, जो चार-पांच वर्ष का होता है, के सफलतापूर्वक पूर्ण करने का होता है। उसके बाद उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती। उनका सिर्फ उस सीमित कालखंड में अच्छे-से अच्छे परिणाम देने तक सिमटे रहते हैं।

आज मानव-सभ्यता उस बिंदु से आगे निकल चुकी है, जहां से वापस लौटना बेहद कठिन है। परंतु पिर भी हताश होकर बैठना उचित नहीं है। मानव-जाति सामूहिक रूप से स्थिति की गंभीरता को समझते हुए धर्म-पथ पर चलते हुए वैज्ञानिक चेतावनियों के आधार पर अपनी दिशा का निर्धारण करें। इसी में सबकी भलाई है और मानव का अस्तित्व भी इसी पर निर्भर है।

अंत में यही कहूंगा कि अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, जल, अंतरिक्ष, स्वर्गलोक, दिशा-उपदिशा तथा ऋतु विभाव इस त्रिवृत्त के संयोग से हमें लक्ष्य (प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण) तक पहुंचा दें-

**अग्निः सूर्यश्चंद्रमा भूमिरापो
द्वारंतरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना
अनेन मा त्रिवृत्ता पाश्यंतु।।**

परिणाम

समूची सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश से बनी है। यही पांच तत्व मिलकर समूचे विश्व ब्रह्मांड के जड़, चेतन और जीवों का निर्माण और पोषण करते हैं। यदि यह

जीवनदायी तत्वों की शुद्ध और संरक्षित रहें तो जीवन भी शुद्ध और सुरक्षित रहता है। इन पांच तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। पर्यावरण का संतुलन ही जीवनचक्र को नियंत्रित करता है और इसमें गतिरोध आते ही जीवन संकट में पड़ जाता है। यही कारण है कि इसकी सुरक्षा की चिंता प्राचीनकाल से होती आ रही है। वेदकालीन महर्षिगणों ने इसकी आवश्यकता एवं महत्ता को ध्यान में रखकर इसे शुद्ध एवं संरक्षित रखने हेतु नियम बना लिए थे।

वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रंथ माना गया है। इनमें सृष्टि के जीवनदायी तत्वों की विशेषताओं का काफी सूक्ष्म व विस्तृत विवरण है। ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपांतर और उसके गुणों की व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में वायु के गुणों, कार्य और उसके विभिन्न रूपों का आख्यान मिलता है। अथर्ववेद में पृथ्वीतत्व का वर्णन हुआ है। वैदिक महर्षियों ने इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना। इसीलिए उन दिनों जड़-चेतन, सभी रूपों की उपासना व अभ्यर्थना की जाती थी और इसीलिए वैदिक युग में समस्त सृष्टि में सुख-शांति व समृद्धि का वातावरण था।[39] यजुर्वेद का अध्ययन इस तथ्य का संकेत करता है कि उसके शांति पाठ में पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत और संतुलित बनाए रखने का उत्कट भाव है, वहीं इसका तात्पर्य है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो। इसमें उल्लेख है कि द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक-अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें। अदृश्य आकाश पृथ्वी एवं उसके सभी घटक, जल, औषधियां, वनस्पतियां व संपूर्ण संसाधन एवं ज्ञान शांत रहें। पर्यावरण के प्रति इतना गहन एवं सूक्ष्म ज्ञान का दिग्दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है।

ऋग्वेद में वायु के औषधीय महत्त्व को स्वीकारा गया है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है-हे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र जल की शुद्धता का वर्णन करते हुए कहता है, आओ सभी मिल कर प्रवाहित जल के प्रशंसा के गीत गाएं जो हजारों धाराओं से स्फटिक की तरह बहकर आंखों को आनंद देता है। उपनिषद्कारों ने ऊर्जा के अपरिमित स्रोत सूर्य को जगत् की आत्मा कहकर उसकी अभ्यर्थना की है, सूर्य को प्राण की संज्ञा दी है। यज्ञों के माध्यम से वायुमंडल को शुद्ध करना भी वेदों का विषय रहा है। वैदिककाल में पर्यावरण के परिष्कार के लिए यज्ञ-हवन संपन्न किए जाते थे।

सामवेद में जीवन की मंगलकामना और प्रकृति की अविरल उपासना के भाव वर्णित हैं। इसमें वनस्पतियों और पशुजगत तथा औषधि विज्ञान के सुंदर मंत्रों के उद्धरण हैं। सामवेद कहता है - हे इंद्र, सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम, आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है। अथर्ववेद में भी पर्यावरण संरक्षण और संवद्र्धन संबंधी चिंतन का गौरवगान हुआ है। पृथ्वी सूक्त में अथर्वण ऋषि धरा की महानता, उदारता, सर्वव्यापकता आदि अनंत गुणों पर विस्मित हो कह उठते हैं, हे माता! आपके लिए ईश्वर ने शीत, वर्षा तथा वसंत ऋतुएं बनाई हैं। दिन-रात के चक्र स्थापित किए हैं। इस कृपा के लिए हम ईश्वर के आभारी हैं। वे खनन से पूर्व धरती

माता से प्रार्थना करते हैं कि हे मां, जीविकोपार्जन के लिए हम ऐसा करने को बाध्य हैं, किन्तु हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह तुम्हें पुनः हरा-भरा कर दे। हम भूमि के जिस स्थान पर खनन करें, वहां शीघ्र ही हरियाली छा जाए। आपसे प्रार्थना है कि ऐसी सदबुद्धि दें जिससे हम आपके हृदय स्थल को न तो आहत करें, और न ही आपको दुःख पहुंचाएं। व्यक्ति स्वस्थ, सुखी दीर्घायु रहे, नीति पर चले और पशु वनस्पति एवं जगत् के साथ साहचर्य रखे, यही वैदिक साहित्य की विशेषता है।

वैदिक कर्मकांडों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया है। आरण्यक ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी है। 'अरण्ये भवमेति आरण्यकम्' कहकर आरण्यक का अर्थ स्पष्ट किया गया है। बृहदारण्यक भी 'अरण्येनूत्यमानत्वात् अरण्यकम्' के रूप में इसका समर्थन करता है। इसका विषय प्राणविद्या है। अंतरिक्ष और वायु से प्राण का संबंध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती है जिससे विकास की गति अग्रसर होती है।

उपनिषदों में जल, वायु, पृथ्वी और अंतरिक्ष का विशद वर्णन हुआ है। इसमें प्रकृति की महत्ता को पर्याप्त मान्यता प्रदान की गई है। इनके अनुसार पदार्थ की उत्पत्ति एवं जीव-जगत् की सृष्टि अग्नि जल और पृथ्वी के विनियोग से हुई है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् ने इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की विवेचना की है। छांदोग्य उपनिषद् स्पष्ट करता है कि सात्विक ओर से परिष्कृत में का सीधा संबंध है। इसमें आगे और स्पष्ट करते हुए उल्लेख है कि पृथ्वी, जल और पुरुष सभी प्रकृति के घटक हैं। पृथ्वी का रस जल है और जल का रस औषध है। औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम और साम का रस उद्गीथ है, अर्थात् पृथ्वी तत्व में ही सब तत्वों को प्राणवान बनाने के प्रमुख कारण है।

रामायणकाल में भी पर्यावरण चेतना पर्याप्त सक्रिय थी। वाल्मीकि रामायण में राम के वन गमन के समय प्रकृति के मनोरम दृश्य का उल्लेख किया गया है-इस समय पर्वत प्रदेश, घने-जंगल एवं रम्य नदियों के किनारे सारस और चक्रवाक पक्षी आनंद में विचर रहे थे। सुंदर जलाशय में कमल दल खिले हुए थे। जंगलों में झूंड के झूंड हिरन, गैंडे वाराह और हाथी निर्भय घूम रहे थे अर्थात् उन दिनों पर्यावरण अत्यंत समृद्ध था। इस काल का चित्रण करने वाले महाकवि भवभूति ने भी प्रकृति का अत्यंत हृदयग्राही चित्रण करते हुए लिखा है कि वनों में सिद्ध तपस्वियों के आश्रम हरियाली से भरापूर थे। वहां स्वच्छंद विचरण करते हिरण शावक इन प्राकृतिक आवासों की शोभा बहुगुणित कर देते थे। रामायण कालीन ग्रंथों में प्रकृति को सजीव व निर्जीव दोनों ही तत्वों से चेतना संपन्न बताया गया है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में वर्णन मिलता है कि चरागाह तालाब, हरित भूमि, वन उपवन के सभी जीव आनंद पूर्वक रहते थे।

इसी तरह महाभारतकालीन मनीषियों ने भी पर्यावरण की गौरव गरिमा को महिमा मंडित किया है। इस काल में भगवान् कृष्ण द्वारा गाई गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं, प्रकृति के कण-कण में सृष्टि का रचयिता समाया हुआ है। प्रकृति के समस्त चमत्कारों को परमेश्वर का स्वरूप बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके सभी भूत-प्राणियों को धारण करता हूँ। चंद्रमा बनकर औषधियों का पोषण करता हूँ। महाभारतकाल में प्रत्येक तत्व को देवता सदृश स्वीकार कर उनकी अभ्यर्थना की जाती थी। उन दिनों वृक्षों की पूजा का प्रचलन था। वृक्षों को काटना महापाप समझा जाता था। महाभारत के आदिपर्व में वर्णन है कि गाँव में जो जगह पेड़ फूल और फलों से भरपूर हो वह स्थान हर तरह से अर्चनीय है। इसमें प्रकृति का अनेक उपमाओं से अलंकृत किया गया है। पवित्र और शीतल जलाशय तथा जंगल पहाड़ व पर्वतों आदि को प्रकृति व पर्यावरण के अद्भुत प्रसंगों से महाभारत के सभी पर्व भरे पड़े हैं। महाकवि कालिदास ने भी अपने नाटकों एवं काव्यों में पशु-पक्षी वृक्षादि से मानवीय जीवन का अपूर्व संबंध स्थापित किया है। अभिज्ञान शाकुंतलम् ने तो इन रिश्तों व संबंधों को सजीव कर दिया है। कण्व आश्रम में पत्नी बद्धी शाकुंतला अपने चारों ओर के परिवेश एवं वातावरण से इतना एकात्म एवं तदाकार हो गई थी कि उसका विछोह सभी को विह्वल कर रहा था। उसकी विदाई के समय पशु पक्षी ही नहीं वनस्पति जगत् भी उदास हो गया था।

वैदिक वांग्मय में दर्शन भी पर्यावरण की चिंतन चेतना से ओतप्रोत रहे हैं। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के समन्वय को सृष्टि का कारण माना है। प्रकृति जड़ एवं स्थूल होते हुए भी अति सूक्ष्म है। अतः प्रकृति समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। चूंकि प्रकृति को यहां सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शाया है, इसलिए इसमें पर्यावरण अनायास ही जीवंत हो उठा है। न्यायदर्शन में ईश्वर एवं जीव के साथ प्रकृति भी महत्वपूर्ण घटक है।

वैदिक एवं दार्शनिक साहित्य की ही भाँति पुराणों में भी पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना गया है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। यहां मिट्टी प्रस्तर के पहाड़ को देवात्मा हिमालय बताया है तो नदियों को देवी का पर्याय माना है, जिसमें पुण्यतोया गंगा का स्वरूप तो अवर्णनीय है। पुराणों के अनुसार ईश्वर संसार के कल्याणार्थ कभी मत्स्य का आकार ग्रहण करते हैं तो कभी कछुआ, हंस बनकर इनकी महत्ता प्रतिपादित करते हैं। सिंह और वाराह के रूप में आकर सभी जीवों की श्रेष्ठता घोषित करते हैं। इसी लिए भारतीय संस्कृति में सभी जड़-चेतन का दिव्य माना है। पुराणों की रचना का आधार भी सृष्टि के तत्वों को लेकर बना है। अनेक पुराणों का नामकरण भी इन तत्वों के नामों को लेकर हुआ है। अग्निपुराण, वायुपुराण आदि में यही भाव दिखाई देता है। इन सभी पुराणों में दिव्य प्रकृति का सहज वास है।[40]

ब्रह्मपुराण में गंगाजल की विशेषता खासतौर पर परिलक्षित होती है। वृक्ष मानवमात्र के लिए सतत् प्राणदायक वायु का संचार करते हैं। यही वजह है कि भारतीय ऋषियों महर्षियों ने वृक्षों के प्रति अगाध अनुराग भावना प्रदर्शित की है। यहां पर वृक्ष पूजा का

. प्राचीन शास्त्र अन्य बातों के साथ-साथ पृथ्वी के विकास, वर्षा के विज्ञान, इसकी माप और पूर्वानुमान, जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, जल उपयोग और प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण और कृषि योजना आदि के बारे में बहुत विस्तार से प्रस्तुत करते हैं।

यह जानना दिलचस्प है कि प्रकृति की संस्थाओं के लिए परम श्रद्धा देवताओं (देवता) के रूप में मानी जाती थी। वे सभी शक्तियाँ जो वर्षा की सहायक थीं जैसे सूर्य (जिन्हें आदित्य भी कहा जाता है), वायु आदि को देवताओं के रूप में प्रार्थना की गई थी। प्रत्येक मुख्य ब्रह्मांडीय तत्व को एक देवता भी सौंपा गया था। इंद्र सबसे शक्तिशाली देवता हैं जो पानी को मुक्त करने के लिए बादल के प्रतीक वृत्र को मारते हैं। मरुत वायु के देवता माने जाते हैं और आर्यमन, मित्र, वरुण और सोम जल के सूत्रधार हैं। अदिति की सभी प्राकृतिक ऊर्जाओं की जननी देवमाता के रूप में प्रशंसा की जाती है और वह प्रकृति का प्रतीक है। अग्नि (अग्नि) को भी एक देवता के रूप में माना जाता था।[39]

वैदिक ब्रह्माण्ड विज्ञान:

वैदिक ब्रह्माण्ड विज्ञान में, पृथ्वी (पृथ्वी) भौतिक आधार का प्रतीक है और ऊपरी आकाश या स्वर्ग (द्यौस) अव्यक्त अमर स्रोत का प्रतीक है जो एक साथ और उनके बीच, पर्यावरण (पर्यावरण) प्रदान करते हैं। स्वर्ग और पृथ्वी (दयापृथिवी) को सभी जीवित प्राणियों को पानी और भोजन प्रदान करने वाले माता और पिता के रूप में जाना जाता है। द्रष्टा स्वर्ग और पृथ्वी (दयवपृथिवी) की प्रशंसा करते हुए कहता है, "तुम घिरे हुए हो, स्वर्ग और पृथ्वी, पानी से, तुम पानी के लिए आश्रय हो; जल से ओत-प्रोत, जल को बढ़ाने वाले, विशाल और विविध; आप यज्ञ में सबसे पहले प्रसन्न होते हैं, पवित्र (लोग) आपसे खुशी के लिए प्रार्थना करते हैं, ताकि बलिदान (उत्सव मनाया जा सके)। स्वर्ग और पृथ्वी, जल के पुतले, जल के दूहने वाले, जल के कार्यों के निर्वहनकर्ता, देवता, यज्ञ के प्रवर्तक, धन के दाता, यश के, भोजन के, पुरुष वंश के, एक साथ मिलें।" भूमिसूक्त या पृथ्वीसूक्त वैदिक ऋषियों की पर्यावरणीय चेतना को इंगित करता है। उन्हें वसुधा, हिरण्यवक्ष, जगतो नेवेषानी और विश्वम्भर कहा जाता है। "यदि वातावरण, पृथ्वी, और आकाश और अगर हमने पिता और माता को घायल कर दिया है, तो इस गृहस्थ की आग हमें उनकी पूरी तरह से बहाल स्थिति की दुनिया में ले जा सकती है। धरती माता, अदिति हमारी जन्मभूमि, भ्राता वातावरण हमें अपशब्दों से बचाएँ; हमारे पिता स्वर्ग हमारे लिए पितृ दोष (अपराधबोध) से दूर हो सकते हैं; अपने सम्बन्धियों के पास जाकर, मैं उनकी दुनिया से न गिर जाऊँ।"

वैदिक साहित्य में जल:

वैदिक साहित्य में जल का अत्यधिक सम्मान और सम्मान किया गया है और पुरुषों को प्रजनन शक्ति प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई है। जल मानव पर्यावरण का एक हिस्सा है जो पाँच रूपों में होता है: वर्षा जल (दिव्याह), प्राकृतिक झरने (श्रवंती) कुएँ और नहरें (खनित्रिमाह), झीलें (स्वयंजाह) और नदियाँ (समुद्रार्थ)। पीने के पानी के रूप में कुछ अन्य वर्गीकरण हैं; औषधीय जल और स्थिर जल भी वैदिक साहित्य में हैं। इसमें उल्लेख है- "सभी जीव

जल से उत्पन्न होते हैं।" जल को ज्यादातर "मातृविहीन, और स्थिर और चलने वाली सभी चीजों का निर्माता" माना गया है। उन्हें सभी प्राणियों की माता के रूप में भी जाना जाता है। "यह पानी है जो सब कुछ, बड़ा या छोटा, पृथ्वी, वातावरण, स्वर्ग, पहाड़, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, घास, पौधे, कुत्ते, कीड़े, कीड़े, चींटियाँ व्याप्त है। ये सभी (सांसारिक अभिव्यक्तियाँ) वास्तव में जल हैं। "वे ब्रह्मांड में सभी की नींव हैं।" "वे सभी देवताओं के निवास स्थान हैं।" तैत्तरीय उपनिषद कहता है: "स्वयं से, वास्तव में, अंतरिक्ष उत्पन्न हुआ, अंतरिक्ष वायु से, वायु अग्नि से, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से जड़ी-बूटियाँ, जड़ी-बूटियों से भोजन, भोजन वीर्य से, वीर्य से व्यक्ति।"

जीवित रहने के लिए पानी का महत्व:

जीवित प्राणियों के लिए जल के महत्व को हमेशा समझा गया है और वैदिक ऋषियों द्वारा इस प्रकार कहा गया है: "जल इस संसार के लिए माता के समान है। यह विश्व का स्वामी है। यह जीवों के कल्याण के लिए दैवीय धन, अनैतिकता, पवित्र कर्मों को अपने कब्जे में रखता है। "पानी जीवन में जो कुछ भी अच्छा है उसका आधार है। सबसे खूबसूरत चीजें हमारे साथ होती हैं क्योंकि पानी हमें ताकत देता है।" यही मंत्र अथर्ववेद में है और आज भी हमारे अनुष्ठानों में दोहराया जाता है। "जल पृथ्वी पर जीवित प्राणियों पर अधिकतम नियंत्रण रखता है।" देवियों की तरह पूजी जाने वाली नदियों को पवित्र माना जाता था और उनमें जल को जीवनदायी, औषधीय, अमृत के रूप में, पापों को साफ करने वाला और दिव्य, रक्षक और आनंदमय माना जाता था। इसे विभिन्न नामों से संबोधित किया गया था: अमृत, शहद...। प्रार्थनाओं में।

वेदों में मित्र और वरुण को जल का कारक माना गया है। बारिश के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए एक भजन में उनका आह्वान किया जाता है - "मैं शुद्ध शक्ति के मित्र, और शत्रुओं के भक्षक वरुण का आह्वान करता हूँ; पानी (पृथ्वी पर) देने वाले अधिनियम के संयुक्त निष्पादक। मित्र और वरुण, जल के वर्धक, जल के दाता, आप इस उत्तम संस्कार को उसके सत्य (पुरस्कार) से जोड़ते हैं। मित्र, अपने सामान्य अर्थ में सूर्य का नाम है; जल के अधिपति वरुण। कहा जाता है कि मित्र और वरुण वाष्पीकरण उत्पन्न करके अप्रत्यक्ष रूप से वर्षा करते हैं, इस प्रकार उठे हुए वाष्प वातावरण में संघनित होकर पुनः वर्षा में उतरते हैं। ऋषि मरुतों (हवा के देवता) को ऐसी परिस्थितियाँ बनाने के लिए आमंत्रित करते हैं जिससे बारिश पृथ्वी पर बरसने के लिए बनती है। यह हाइड्रोलॉजिकल घटना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है - "शक्ति के पुत्र, मरुत, आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं; आकाश से आगे बढ़ें, अग्नि पृथ्वी से (आपसे मिलने के लिए) आती है, हवा आकाश को पार करती है; और वरुण तरंगित जल (बादल) के साथ आता है। उन्होंने मरुतों से प्रार्थना की कि वे ऐसी स्थिति पैदा न करें जिससे अत्यधिक वर्षा खुशी के बजाय बाढ़ से दुख का कारण बने। "तेजमान, सदा चलने वाले मरुतों ने (अपने) सहयोगी (बिजली) के साथ, जैसे (युवाओं) आम महिलाओं के साथ घुलमिल गए हैं; दुर्जय देवता स्वर्ग और पृथ्वी (अधिक वर्षा के साथ) को अभिभूत नहीं करते हैं, लेकिन (दोस्ताना)

सम्मान के माध्यम से उनकी समृद्धि को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार, भारतीय समाज में जल और जल निकायों का उनके विभिन्न रूपों में प्रभाव व्यावहारिक रूप से संस्कृति और परंपराओं के सभी पहलुओं में देखा गया है, मुख्य रूप से धर्म और प्रार्थनाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, पारिस्थितिकी से संबंधित कार्यों, वास्तुकला, साहित्य, कहावतों, कल्पनाओं पर।

जल प्रदूषण:

ऋषि मनुष्यों द्वारा अवांछनीय कार्यों के बारे में जानते थे जो पानी को प्रदूषित कर सकते हैं या प्रकृति के संतुलन को नुकसान पहुंचा सकते हैं, जिससे पानी पीने के लिए अयोग्य हो सकता है। इस अविवेकी कर्म का विचार ही उसे क्षमा माँगने के लिए प्रेरित करता है - "हम मनुष्य जो कुछ भी अपराध करते हैं, वरुण, देवताओं के विरुद्ध, हम अज्ञानता के कारण जो भी नियम का उल्लंघन कर सकते हैं, क्या आप, दिव्य वरुण, हमें दंडित नहीं करते हैं उस अधर्म का। पद्मपुराण में जल प्रदूषण की जोरदार निंदा करते हुए कहा गया है, "जो व्यक्ति तालाबों, कुओं या झीलों के पानी को प्रदूषित करता है, वह नरक में जाता है।" छंदों का अर्थ एक स्वच्छ और प्रदूषण रहित पृथ्वी और पर्यावरण की कामना करना है जिससे कोई नुकसान या क्षति न हो। पूरे देश में कुंभ सहित जल से संबंधित कई त्योहार मनाए जाते हैं। इस प्रकार,

'अंतरिक्ष' के प्रमुख देवता वायु हैं। Jaiminiya Brahaman उद्धरण, 'वायु अंतरिक्ष में चमकता है। यजुर्वेद कहता है, 'वायु में भेदक तेज है'। वायु का प्रत्यक्ष अर्थ वायु है। वैदिक ऋषि जीवन के लिए वायु के महत्व को जानते थे। वैदिक श्लोकों में वायु की अवधारणा और महत्व पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में उल्लेख है: "हे वायु! आप हमारे पिता, रक्षक हैं। वायु के चिकित्सा मूल्य हैं। "हवा दवा के रूप में बहने दो और मेरे लिए कल्याण और खुशी लाओ।" औषधीय वायु प्रदूषण का नाश करने वाला अंतरराष्ट्रीय चिकित्सक है और दुनिया के लोगों को स्वास्थ्य और प्रफुल्लितता, जीवन और जीवंतता प्रदान करता है। इस प्रकार, वैदिक ऋषियों ने इस बात पर बल दिया कि प्रदूषणरहित, शुद्ध वायु अच्छे स्वास्थ्य, प्रसन्नता और दीर्घ जीवन का स्रोत है।

प्रकृति और पर्यावरण:

पशु और पक्षी प्रकृति और पर्यावरण का हिस्सा हैं। वैदिक ऋषियों ने इनके गुणों का उल्लेख किया है और इनका कल्याण चाहा है। ऋग्वेद उन्हें तीन समूहों में वर्गीकृत करता है: आकाशीय जानवर, जंगल के जानवर और मानव आवास में रहने वाले जानवर। ब्रह्मांड में पाए जाने वाले सभी जीवित प्राणियों का पर्यावरण दूरस्थ है और प्रत्येक जीवित प्राणी का अपना एक पर्यावरण है। लेकिन जब हम मनुष्य के दृष्टिकोण से देखते हैं तो ये सभी उसके पर्यावरण का निर्माण करते हैं। वैदिक ग्रंथों में एक सामान्य भावना है कि जानवरों को सुरक्षित, संरक्षित और स्वस्थ होना चाहिए। वैदिक लोगों ने अपने मवेशियों, गायों, घोड़ों आदि के कल्याण के लिए उत्सुकता दिखाई है। धन और समृद्धि के प्रतीक के रूप में गाय, वैदिक काल में लोगों के जीवन में एक प्रमुख स्थान रखती थी।

वैदिक काल में लोग प्रकृति और पर्यावरण को समग्र रूप से मानते थे और सावधानीपूर्वक संरक्षित करके इसके प्रत्येक घटक और संस्थाओं का सम्मान करते थे। ऋग्वेद में 'अरण्यणी सूक्त' को वन देवता को संबोधित किया गया है। पेड़-पौधों से जंगल हरा-भरा होना चाहिए। 'ओषधि सूक्त' पौधों और सब्जियों को माता कहकर सम्बोधित करता है। अथर्ववेद में ओषधियों के कुछ नामों का उनके मूल्यों के साथ उल्लेख है। छांदोग्य उपनिषद् विस्तार से बताता है "पानी ने पौधों को उत्पन्न किया है जो बदले में भोजन उत्पन्न करते हैं।" ऋग्वेद निर्देश देता है कि जंगलों को नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। पृथ्वी सृष्टि की रक्षक है, वनों, वृक्षों और जड़ी-बूटियों का पात्र है। पौधे जीवित हैं। अथर्ववेद जड़ी-बूटियों के निरंतर विकास के लिए प्रार्थना करता है। एक पद्मपुराण का एक महत्वपूर्ण उद्धरण 'एक पेड़ दस पुत्रों के बराबर होता है' आज की दुनिया के लिए बहुत प्रासंगिक है।

यज्ञ 'यज्ञ' को वैदिक दर्शन और धर्म की एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में माना जाता है लेकिन व्यापक अर्थों में यह वैदिक पर्यावरण जागरूकता का एक हिस्सा लगता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में 'यज्ञ' को पूरी दुनिया की "नाभि (नाभिक)" के रूप में वर्णित किया गया है। यज्ञ के माध्यम से वैदिक ऋषि मंत्रों के सही अर्थ को समझने में सक्षम थे। इसे श्रेष्ठ कर्म माना जाता है। पर्यावरण में सभी तत्व परस्पर संबंधित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सूर्य किरणों द्वारा समुद्र से जल खींच रहा है। पृथ्वी आकाश से वर्षा करती है और पौधे उगाती है। पौधे जीवों के लिए भोजन का उत्पादन करते हैं। प्रकृति की पूरी प्रक्रिया और कुछ नहीं बल्कि एक प्रकार का यज्ञ है। यजुर्वेद का मत है कि यज्ञ अपने औषधीय धुएं से वातावरण को शुद्ध करता है, दीर्घायु, श्वास, दृष्टि आदि प्रदान करता है। सृष्टि के आदिकाल से ही सृष्टि में यह यज्ञ लगभग हर जगह उत्पादन के लिए और संसार में भरण-पोषण के लिए भी चल रहा है। इस प्रकार, यज्ञ की अवधारणा वैदिक पर्यावरण जागरूकता का एक प्रमुख सिद्धांत प्रस्तुत करती है।

तर्कशास्त्री मानस को ब्रह्मांड के नौ मूल पदार्थों में से एक मानते हैं। वेदों में कई प्रार्थनाएँ मिलती हैं जो भगवान से मन को बुरे विचारों और बुरी सोच से मुक्त रखने का अनुरोध करती हैं। यद्यपि मन का अध्ययन सीधे आधुनिक पर्यावरण विज्ञान की सामग्री के अंतर्गत नहीं आता है लेकिन वैदिक ऋषियों की सांस्कृतिक पर्यावरणीय चेतना के संदर्भ में हमें मन के प्रदूषण और उसकी सावधानियों पर वैदिक साहित्य में कई विचार मिलते हैं। वैदिक ऋषि न केवल प्राकृतिक वातावरण अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, प्रकाश, अंतरिक्ष आदि की शुद्धता के प्रति जागरूक थे बल्कि मानव मन और आत्मा के प्रति भी जागरूक थे।

ऋग्वेद एक सुरक्षात्मक परत की उपस्थिति का स्पष्ट संदर्भ देता है 'जिसे हम अब ओजोन परत के रूप में जानते हैं' जो सूर्य की हानिकारक किरणों को फ़िल्टर करती है और पृथ्वी की रक्षा करती है और स्वास्थ्य के लिए जिम्मेदार वातावरण में प्रवेश करने वाले विकिरण की प्रशंसा करती है। पर्यावरण का। ऋग्वेद के एक भजन में ऋषि अश्विनियों से प्रार्थना करते हैं कि वे पृथ्वी के

तापमान को प्रभावित करने वाले किसी भी अत्यधिक सौर ज्वाला से सुरक्षा के लिए उनकी कृपा करें।

इस प्रकार, प्राचीन वैदिक ऋषि पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं, ब्रह्मांडीय व्यवस्था के बारे में और सार्वभौमिक शांति और सद्भाव के लिए सभी प्राकृतिक शक्तियों के बीच समन्वय के महत्व के बारे में भी जानते थे। 'शांति मंत्र' में वे सभी स्तरों पर शांति के लिए प्रार्थना करते हैं: "आकाश की शांति, मध्य क्षेत्र की शांति, पृथ्वी की शांति, जल की शांति, पौधों की शांति, पेड़ों की शांति, सभी देवताओं की शांति, ब्रह्म की शांति", ब्रह्मांड की शांति, शांति की शांति; वह शांति मेरे पास आए!"। इस प्रकार, पर्यावरण के साथ सद्भाव में रहने की वैदिक दृष्टि न केवल भौतिक थी बल्कि कहीं अधिक व्यापक और व्यापक थी। वैदिक लोग सौ वर्ष का जीवन जीने की इच्छा रखते थे। यह बहुत स्पष्ट है कि हमारे वैदिक ऋषि पर्यावरण के बारे में जागरूक थे। 'दूसरों के हिस्से को त्यागने या त्यागने में आनंद लेना चाहिए।' वैदिक संदेश स्पष्ट है कि पर्यावरण सभी जीवित प्राणियों का है। [40]

संदर्भ

- [1] पृथ्वी (तैत्तिरीय संहिता, 2/1/2/3, निरुक्त, 1/4/5, ऋग्वेद सायण भाष्य, 5/85/1 और अमरकोश, रामाश्रमी : टीका, पृ. 141) के विस्तार के कारण पृथ्वी है।
- [2] गौः (निरुक्त 2/2/5) गति के कारण गौ है।
- [3] भूमि (रामाश्रमी टीका, अमरकोष पृ. 141) निवास योग्य होने के कारण भूमि है।
- [4] वसुंधरा (वही, पृ. 141) रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण।
- [5] मही (वही, पृ. 141) पूजनीय एवं इसमें प्राणियों के बड़े होने के कारण।
- [6] धरा (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
- [7] धरणी (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
- [8] अवनी (वही, पृ. 141) प्राणियों की रक्षा एवं पालन करने के कारण।
- [9] मेदिनी (वही, पृ. 141) समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण।
- [10] स्थिरा (वही, पृ. 141) अपने स्थान पर स्थित रहने के कारण।
- [11] विश्वभरा (वही, पृ. 141) सबका भरण-पोषण होने के कारण।
- [12] रसा (वही, पृ. 141) रस से परिपूर्ण होने के कारण।

- [13] क्षमा (वही, पृ. 141) क्षमाशील होने के कारण।
- [14] गोत्रा (वही, पृ. 142) सहनशील होने के कारण।
- [15] सर्वसहा (वही, पृ. 142) सब कुछ सहने के योग्य होने के कारण।
- [16] अचल (वही, पृ. 142) स्थित होने के कारण।
- [17] अनंता (वही, पृ. 142) अंतिम छोर न होने के कारण।
- [18] अथर्ववेद भाग-1 प्रस्तुति- आचार्य वेदांत तीर्थ, मनोज पब्लिकेशंस, 761 मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-11084, पृ. 35 संस्करण 2010
- [19] वही, पृ. 35-36
- [20] वही, पृ. 36
- [21] वही, पृ. 61
- [22] वही, पृ. 87-88
- [23] वही, पृ. 112
- [24] वही, पृ. 121
- [25] वही, पृ. 121
- [26] वही, पृ. 121
- [27] वही, पृ. 121
- [28] वही, पृ. 122
- [29] वही, पृ. 127
- [30] वही, पृ. 150
- [31] वही, पृ. 159
- [32] वही, पृ. 169
- [33] वही, पृ. 290-291
- [34] वही, पृ. 308
- [35] वही, पृ. 333
- [36] वही, पृ. 355
- [37] वही, पृ. 255
- [38] वही, पृ. 35
- [39] वही, पृ. 43-44
- [40] वही, पृ. 169-170